सद्विचार पुस्तक माला नं० १०

जीवन्मुक्ति ।

श्रीयुत जेम्स एलन के All these Things added नामक पुस्तक का भाषानुवाद ।

मोतीलाल जैन, एम. ए.

चेतनदास, बी. ए.

प्रकाशक—

हिंदी साहित्य-भंडार, लखनऊ ।

पथमावृत्ति] अप्रैल १६१६ [मूल्य ॥=)

Printed by C. M. Dayal at The Anglo-Arabic Press, Luck-

मूल ग्रन्थकर्ता का वक्तव्य।

इस लोक में सुखों को और परलोक में शुभ फलों को खोजने में लगे रहने के कारण मनुष्यों ने पवित्रता के मन्दिर को (जो उन के हृदयों में है) ढा दिया है और वे मोक्षधाम से दूर जा पड़े हैं। यदि मनुष्य इस लोक के सुखों और परलोक के शुभ फलों की अकांक्षा छोड़ दें, तो वे पवित्रतः के मन्दिर को पुनः स्थापित करके मोक्षधाम में प्रवेश कर सकते हैं। यह सिद्धान्त उन मनुष्यों के लिए है जो इसको ग्रहण करने के लिए तैयार हैं और यह पुस्तक भी उन्हीं के लिए है जिनकी आत्माएं इसके उपदेशों को स्वीकार करने के लिए तैयार हो चुकी हैं।

जेम्स एलन—

विषय-सूची ।

——:o:——

प्रथम भाग

मुक्तिधाम में प्रवेश ।

आत्मा को किस बात की परम आवश्यकता है ?

मैंने जगत को छान डाला, शांन्ति को पाया नहीं ।
विद्या पढ़ी, पर सत्य को देखा नहीं उस में कहीं ॥
सत्संग दर्शन शास्त्र का कर, पर गया मन मान से ।
हा ! शान्ति एवं सत्य दोनों किस जगह पर जा बसे !

प्रत्येक मनुष्य की आत्मा को कुछ आवश्यकता है । इस आवश्यकता को भिन्न भिन्न आत्माएँ भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकट करती हैं । परन्तु एक भी आत्मा ऐसी न मिलेगी जिसे यह आवश्यकता न हो । हाँ, यह हो सकता है कि एक आत्मा को कम आवश्यकता हो और दूसरी को अधिक । यह आवश्यकता अध्यात्मिक है और चाहे जब उत्पन्न हो जाती है । आत्मा की उन्नति करते करते एक ऐसा समय आ जाता है जब यह आवश्यकता एक तीव्र इच्छा रूप धारण कर लेती है । संसार के चाहे कितने ही पदार्थ हम को मिल जायँ, परन्तु वे आत्मा की इस इच्छा को पूरा नहीं कर सकते । परन्तु फिर भी बहुत सी आत्माएँ अल्प ज्ञान के कारण अथवा भ्रम में पड़ कर इस इच्छा को पूरा करने

के लिए संसार के पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करती हैं। वे यह समझती हैं कि इन पदार्थों से उनकी आवश्यकता पूरी हो जायगी और उनको शान्ति मिल जायगी।

प्रत्येक आत्मा जान बूझ कर अथवा अनजान में पवित्रता को प्राप्त करने की इच्छा करती है और प्रत्येक आत्मा अपने ही ढंग से और अपने ही ज्ञान के अनुसार इस इच्छा को पूरा करने का प्रयत्न करती है। सब आत्माओं की इच्छा एक ही है और पवित्रता भी एक ही पदार्थ है, परन्तु पवित्रता प्राप्त करने के लिए जिन मार्गों का अवलम्बन किया जाता है वे अनेक हैं। मनुष्य जान बूझ कर पहले से ही सोच विचार कर इच्छित पदार्थ को खोजते हैं वे धन्य हैं। उनकी आत्मा को शीघ्र ही वह चिरस्थायी आनन्द मिलेगा जो केवल पवित्रता के द्वारा प्राप्त हो सकता है, क्योंकि उनको सच्चे मार्ग का ज्ञान हो गया है। जो मनुष्य असली मार्ग को बिना जाने बूझे ही इच्छित पदार्थ की खोज करते हैं वे चाहे थोड़े समय के लिए सुख-सागर में डुबकियाँ लगा लें, परन्तु उन को उस पदार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। उनको कष्ट उठाना पड़ेगा और वे इधर उधर भटकते फिरेंगे। उनकी इच्छा और भी तीव्र हो जायगी और उनकी आत्मा अपने खोये हुए धन को (अक्षय पवित्रता को) बार बार माँगेगी।

केवल पवित्रता ही आत्मा को सदा के लिए संतुष्ट कर सकती है। त्रिलोक के किसी पदार्थ में यह शक्ति नहीं है। संसार में दुख झेलते झेलते जब आत्मा को कहीं भी ठिकाना नहीं मिलता तब वह अंत में पवित्रता की ओर दौड़ती है, क्योंकि

केवल पवित्रता के क़िले में ही वह सुरक्षित रह सकती है। वहाँ उसे वह सुख, तुष्टि और शान्ति मिलती है जिनकी खोज में वह बहुत समय तक वृथा ही इधर उधर भटकती रही।

अतएव आत्मा को परम आवश्यकता पवित्रता की है। कारण कि पवित्रता के आधार पर वह संसार के झंझटों से सुरक्षित और शान्त रह सकती है। उसे इधर उधर भटकने की जरूरत नहीं। पवित्रता के आधार पर ही वह एक संदुर, शान्तिमय और सर्वगुण संपन्न जीवन की इमारत खड़ी कर सकती है।

पवित्रता के नियम पर चलने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष में पहुँच कर आत्मा फिर संसार में नहीं आती और वहाँ पर उसे चिरस्थायी आनन्द मिलता है। मोक्ष मिल जाने से सब कुछ मिल जाता है और मोक्ष न मिलने से कुछ हाथ नहीं आता। मोक्ष अर्थात् मुक्ति क्या है? वह हमारे मस्तिष्क की ऐसी दशा है, ऐसा अनिर्वचनीय ज्ञान है जिस में आत्म संग्राम का अंत हो जाता है, जिस में आत्मा को संपूर्ण और स्थायी आनन्द मिलता है और जिस में आत्मा की परम आवश्यकता, बल्कि यों कहना चाहिये कि उसकी प्रत्येक आवश्यकता संग्राम तथा भय के बिना ही पूरी हो जाती हैं। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर बुद्धिमानी के साथ मोक्ष की प्राप्ति की चेष्टा करते हैं वे धन्य हैं, उनका परिश्रम कभी निष्फल नहीं जा सकता।

प्रतिद्वंदिता के नियम और प्रेम का नियम।

मनुष्य कहते हैं कि प्रकृति के नियम कठोर हैं, परन्तु वे इन नियमों को दयालु भी बतलाते हैं। पहली बात का कारण यह है कि लोग प्रकृति में केवल तीव्र प्रतिद्वंदिता को (होड़ा होड़ी को) देखते हैं। दूसरी बात का कारण यह है कि लोग प्रकृति के केवल उन नियमों पर ध्यान देते हैं जिनसे रक्षा और दया का स्रोत बहता है। यथार्थ में बात यह है कि प्रकृति के नियम न तो कठोर हैं और न दयालु। वे पूर्णतया न्यायसंगत हैं, बल्कि उनको न्याय के अटल सिद्धान्त के फल कहना चाहिए।

प्रकृति में जो निष्ठुरता दिखाई देती है और जिसके कारण अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं वह जीवन का आवश्यक अंग नहीं है। वह एक प्रकार का दुःखमय अनुभव है जिसके द्वारा अंत में हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है। अथवा यों कहिए कि अज्ञान

और अशान्ति की रात के वाद आनन्द और शान्ति के प्रकाश मय प्रभात का उदय होता है।

जब कोई छोटा वालक आग में जल कर मर जाता है तब हम प्रकृति के उस नियम को, जिसके कारण वालक की मृत्यु हो गई, कठोर नहीं वताते। उस समय हम यही कहते हैं कि वालक अनजान था अथवा उसके माता पिता ने उसकी निगरानी नहीं की। इसी प्रकार मनुष्य और अन्य जीवधारी कषाय की अदृश्य अग्नि में प्रति दिन जला करते हैं। वे जला देनेवाली अविराम आत्मिक शक्तियों के शिकार वन जाते हैं। इन शक्तियों को वे अज्ञान के कारण ठीक ठीक नहीं समझते। मूर्खता के कारण वे इन शक्तियों का अब दुरुपयोग करते हैं और हानि उठाते हैं, परन्तु धीरे धीरे वे इन शक्तियों को अपने वश में करना और इन के द्वारा अपनी रक्षा करना सीख जायँगे।

प्रत्येक जीवधारी का चरमोद्देश्य अपनी आत्मा की अवश्य शक्तियों को समझना, उनको वश में रखना और उनका सदुपयोग करना है, कुछ मनुष्य भूत काल में इन वड़े और ऊँचे उद्देश्यों की पूर्ति कर चुके हैं और कुछ मनुष्यों ने वर्तमान काल में भी ऐसा ही किया है। जब तक हम इस उद्देश्य की पूर्ति न करेंगे तब तक हमको वह स्थान न मिलेगा, जहाँ पर हमको अपने सुख की सभी आवश्यक सामग्री विना लड़े झगड़े और कष्ट उठाये मिल सकती है।

आजकल के ज़माने में सभी सभ्य देशों में जीवन में वड़ी

बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हो गई हैं। मनुष्य चाहे जो व्यवसाय करते हों वे इस क्षणभंगुर जीवन के लिए तरह तरह का सामान इकट्ठा करने में एक दूसरे से लड़े मरते हैं। उन्होंने स्पर्धा को इतना बढ़ा दिया है कि अब वह सहन नहीं की जा सकती। ऐसे ज़माने में ज्ञान की बड़ी भारी वृद्धि हुई है और मनुष्यों ने बड़ी से बड़ी अध्यात्मिक उन्नति कर डाली है, क्योंकि जब आत्मा को सब से अधिक कष्ट होता है तभी उसकी आवश्यकता सब से अधिक बढ़ती है और तभी वह अपनी आवश्यकता को पूरा करने का सब से अधिक प्रयत्न करती है, और जब प्रयत्न करने के लिये उत्तेजना अधिक होगी तब सफलता भी बड़ी और स्थायी होगी। मनुष्य अपने भाइयों के साथ उस समय तक स्पर्धा करते रहते हैं जब तक वे यह समझते हैं कि स्पर्धा से हमको लाभ होगा और सुख मिलेगा। परन्तु जब इस स्पर्धा से उनको उलटी हानि होने लगती है (क्योंकि इससे हानि अवश्य होती है) तब वे किसी उत्तमतर उपाय की खोज करते हैं। वे मनुष्य धन्य हैं जो अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप करते हैं, जिन्हों ने अपने भाइयों के साथ स्पर्धा करना छोड़ दिया है और जिनको उस दुःख और शोक का ज्ञान हो गया है जो स्पर्धा के कारण होता है, क्योंकि वे ही शान्ति-मंदिर के मोक्ष के द्वार को खोल कर उसमें प्रवेश कर सकते हैं।

जो मनुष्य शान्ति मंदिर को खोजना चाहता है उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि जो रुकावटें उसके मार्ग में उपस्थित होंगी वे कैसी हैं और उनकी उत्पत्ति कैसे होती है। प्रकृति का संग्राम और प्रतिद्वंदिता के नियम, जिनके अनु:

सार मनुष्य कार्य करते हैं और सर्वव्यापी अशान्ति तथा भय जो इन बातों के साथ उत्पन्न होते हैं, मनुष्य को शान्ति मंदिर की खोज करने में रोकते हैं। यदि हम इन बातों को न समझेंगे, तो हम सत्य और असत्य को न समझ सकेंगे और इसलिये हम अपनी आत्मा की उन्नति न कर सकेंगे। सत्य को समझने और उसको ग्रहण करने के पहले, असत्य से परिचित हो जाना चाहिए। सत्य की यथार्थता समझने के पहले उन भ्रम रूपी बादलों को हटा देना चाहिये जो सत्य की यथार्थता को छिपाये हुए हैं। हमको सत्य का असीम समुद्र उसी समय दिखाई देगा जब हमारे आगे से संसार के झंझटों का परदा उठ जायगा।

इस पुस्तक के कुछ पाठक ऐसे होंगे जो विचारवान और जिज्ञासु हैं और जो अपने विचारों और चरित्र को इतना उन्नत बनाना चाहते हैं कि जीवन की पेचीदा बातें और भेदभाव भी उनके लिए सरल और न्यायसंगत हो जायँ। ऐसे पाठकों से मैं अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे साथ साथ मोक्ष के मार्ग पर चलें। परन्तु मैं उनको पहले नरक में ले जाऊँगा, जहाँ पर युद्ध और स्वार्थपरता का बोलबाला है, जिससे हम वहाँ की पेचीदा बातों का ज्ञान प्राप्त करलें और फिर हम मोक्ष धाम को चलेंगे, जहाँ पर शान्ति और प्रेम का साम्राज्य है।

मेरे कुटुम्ब में यह नियम चला आया है कि जब चिल्ले का जाड़ा पड़ता है तब हम लोग पक्षियों के चुगने के लिए कुछ डाल देते हैं। मैंने यह बात देखी है कि जब पक्षी वास्तव में

बहुत भूके होते हैं तब वे बड़े प्रेम से एक साथ रहते हैं, एक दूसरे से चिमटते हैं जिससे कि वे गरम बने रहें और लड़ाई झगड़ा बिलकुल नहीं करते ; और यदि थोड़ा सा दाना उनके आगे डाल दिया जाय तो वे बिना लड़े हुए ही उसको खा लेते हैं। परन्तु यदि उनके सामने इतना खाना डाल दिया जाय जो उन सबकी ज़रूरत से ज़ियादा हो, तो वे तुरंत ही लड़ना शुरू कर देते हैं। कभी कभी हम उनके आगे पूरी रोटी डाल देते थे और तब पक्षी बहुत तेज़ी से और देरतक आपस में लड़ते थे, यद्यपि उनके आगे इतना भोजन होता था कि वे सब मिल कर कई दिन में भी उसे न खा सकते थे। उनमें से कुछ पक्षी जब अपना पेट भर लेते थे और अधिक न खा सकते थे तब वे रोटी के ऊपर खड़े हो कर उसके चारों ओर उड़ते थे और नवागत पक्षियों को चोंच से मारते थे और यह चेष्टा करते थे कि उनको बिलकुल खाना न मिल सके। इस तेज लड़ाई के साथ ही साथ बहुत डर भी लगा हुआ था। प्रत्येक बार जब पक्षी चोंच में रोटी का टुकड़ा लेते थे तब वे इधर उधर फिर कर देखते थे, क्योंकि उनको यह डर लगा रहता था कि या तो उनका भोजन छिन जायगा या उनकी जान जाती रहेगी।

इस घटना से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मनुष्यों के परस्पर व्यवहार में तथा प्रकृति में प्रतिद्वंदिता के नियम किस प्रकार काम करते हैं। प्रतिद्वंदिता का कारण कमी नहीं है बल्कि बाहुल्य है। जो देश जितना ही धनाढ्य और विलास प्रिय होता है उस देश में जीवन के आवश्यक पदार्थ और विलास की सामग्री प्राप्त करने में उतनी ही अधिक

प्रतिद्वंद्विता देखी जाती है । किसी देश में अकाल पड़ जाय तो फिर वहाँ प्रतिद्वंद्विता के स्थान में दया और सहानुभूति से काम लिया जाता है; और उस समय दान देने और लेने में मनुष्यों को उस आनन्द का कुछ स्वाद मिल जाता है जिसका रसास्वादन केवल उन लोगों ने किया है जिन्हों ने अपनी आत्मा को उन्नत कर लिया है ।

इस पुस्तक को पढ़ते समय पाठकों को इस बात पर निरंतर ध्यान रखना चाहिए कि स्पर्धा का कारण बाहुल्य है न कि कमी । इस बात को याद रखने से पाठक केवल इस पुस्तक की बातें को ही नहीं, किन्तु सामाजिक जीवन और मानवी चरित्र की सभी बातों को समझ सकेंगे । इसके सिवाय यदि वे इस बात पर अच्छी तरह और सच्चे हृदय से बार बार ध्यान दें, और फिर जो शिक्षा मिले उसके अनुसार अपने चारित्र को बना लें, तो उनके लिए मोक्ष-मार्ग पर चलना सुगम हो जायगा ।

अब हम उपरोक्त बात का कारण मालूम करेंगे, जिससे हम उन बुराइयों से बच सकें जो उससे संबंध रखती हैं ।

जैसा कि हम प्रकृति में देखते हैं ठीक उसी प्रकार सामाजिक और जातीय जीवन की भी प्रत्येक बात एक कार्य है और ये सब कार्य एक कारण के भीतर गर्भित हैं जो दूर और पृथक नहीं है, किन्तु कार्य का एक आवश्यक अंग है । जिस प्रकार बीज फूल के भीतर विद्यमान रहता है और फूल बीज के भीतर

छिपा रहता है इसी प्रकार कार्य और उसके कारण का संबंध ऐसा अविनाभावी है कि हम इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते । कार्य में निजी शक्ति कुछ नहीं होती । कारण में जो शक्ति होती है उसी से कार्य में भी संचालन-शक्ति आ जाती है ।

यदि हम अपनी दृष्टि फैला कर संसार को देखें तो हम को वह एक रणक्षेत्र के समान मालूम होगा जिसमें मनुष्य, जातियों और देश प्रतिष्ठा और धन के ऊपर एक दूसरे से निरंतर लड़ा करते हैं, हम यह भी देखेंगे कि निर्बल मनुष्य हारते हैं और सबल मनुष्य (जिनके पास निरंतर युद्ध करने की सामग्री है) विजय पाते हैं और संसार के पदार्थों पर अपना अधिकार जमा लेते हैं । इस युद्ध के साथ हम अनेक दुःख भी देखेंगे, क्योंकि युद्ध से दुःखों की उत्पत्ति अवश्य होती है । हम देखेंगे कि पुरुष और स्त्रियाँ उत्तरदायित्व के बोझ के नीचे दब कर अपनी चेष्टाओं में विफल-मनोरथ होते हैं और सब कुछ खो बैठते हैं, कुटुम्ब और जातियों में फूट पड़ जाती है और उनके विभाग हो जाते हैं और देश अपनी स्वतंत्रता खो कर दूसरों की गुलामी करते हैं । आँसुओं की नदियाँ बह कर घोर दुःख और शोक की कथा सुनाती हैं । प्रेमी एक दूसरे से बड़े दुःख के साथ जुदा होते हैं और बहुत से मनुष्य अकाल तथा अस्वाभाविक मृत्यु के ग्रास बनते हैं, यदि हम युद्ध की ऊपरी बातों को छोड़ कर उसकी आन्तरिक गति पर दृष्टि पात करें, तो हम को बहुत करके शोक ही शोक दिखाई देगा ।

मनुष्य जब परस्पर स्पर्धा करते हैं तब ऐसी ही अनेक

बातें देखने में आती हैं, ये बातें कार्य हैं और इन सब कार्यों का एक ही कारण है जो मनुष्य के हृदय में रहता है । जिस तरह अनेक प्रकार के वृक्ष और पौधे एक ही धरती से, उसी मिट्टी से, अपना भोजन प्राप्त करते हैं और उसी पर फूलते फलते हैं, इसी तरह मानवी जीवन के जितने कार्य हैं उन सब की जड़ एक ही स्थान में जमती है और वह स्थान है मानवी हृदय। जो दुख और सुख संसार में दिखाई देता है उसका कारण मानवी जीवन की वाह्य बातों में नहीं किन्तु हृदय और मस्तिष्क की आंतरिक गति में रहता है । मनुष्य जितने वाह्य कार्य करता है उन सब का आधार उसका चरित्र होता है।

मानवी जीवन की जितनी बातें दृष्टि में आती हैं वे सब (किसी कारण के) कार्य हैं । चाहे उनका प्रभाव उलट कर पड़े, परन्तु कार्य की दृष्टि से वे कारण नहीं हो सकती । वे तो सदा के लिए कार्य बनी रहेंगी । उनकी उत्पत्ति किसी स्थायी और आन्तरिक कारण से होती है।

यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह कार्य के चक्कर में पड़ जाता है और भ्रामक बातों को सत्य समझ लेता है, वह इन कार्यों को उलट, फेर कर और उनका मनमानी संबंध स्थिर करके मानवी जीवन की समस्याओं को हल किया करता है। वह गहराई में जाकर उस आन्तरिक कारण को नहीं खोजता जो उन सब कार्यों की जड़ है और जिस के आधार पर मानवी जीवन को शान्तिमय बनाया जा सकता है।

युद्ध, सामाजिक अथवा राजनैतिक झगड़े, सांप्रदायक

पक्षपात, व्यक्तिगत लड़ाइयाँ अथवा व्यापार संबंधी प्रतिद्वंदिता इत्यादि सभी प्रकार के लौकिक संग्राम की उत्पत्ति एक ही कारण से होती है और वह कारण व्यक्तिगत स्वार्थपरता है; यहाँ पर मैं स्वार्थपरता का व्यापक अर्थ लेता हूँ; मैं उसमें सब प्रकार के आत्म-प्रेम और स्वभिमान को गर्भित करता हूँ, मैं इस शब्द में उस इच्छा को भी शामिल करता हूँ जिस के कारण मनुष्य आत्मसुख और आत्मरक्षा की ओर झुकता है।

यही स्वार्थपरता स्पर्धा और स्पर्धा के नियमों का मूल कारण है. यदि स्वार्थपरता न हो तो संसार से स्पर्धा का अस्तित्व ही उठ जाय। जिस मनुष्य के हृदय में स्वार्थ घुसा हुआ है उसके जीवन में स्पर्धा के नियम काम करने लगते हैं और फिर वह मनुष्य उन्हीं नियमों का पालन करने लगता है।

संसार के संग्राम को बंद करने के लिए व्यवसाय इत्यादि के विषय में सैकड़ों नये संगठन किये गये, परन्तु वे सब निष्फल गये और ऐसा होना अनिवार्य था, कारण कि ये संगठन इस भ्रम के आधार पर किये गये थे कि बाह्य राज्य सत्ताएँ उस संग्राम का कारण हैं, परन्तु असली बात यह है कि ये बाह्य सत्ताएँ आंतरिक संग्राम की छाया मात्र हैं वे नदियों के समान हैं जिनमें आंतरिक संग्राम की धाराएँ बहती हैं। नदियों का नाश करना वृथा है क्योंकि फिर आंतरिक संग्राम की धाराएँ अपने लिए और मार्ग निकाल लेंगी अर्थात् नई नई नदियाँ बना लेंगी। इस प्रकार संग्राम बंद नहीं हो सकता; और जब तक हृदय में स्वार्थ घुसा रहेगा तब तक प्रतिद्वंदिता के नियम काम करते

रहेंगे । स्वार्थपरता को ध्यान में रक्खे बिना जितने सुधार किये जायँगे वे सब निष्फल होंगे । परन्तु यदि स्वार्थपरता पर ध्यान रक्खा जायगा और उसको दूर करने का प्रयत्न किया जायगा तो सुधार करने में अवश्य सफलता होगी ।

इसलिए स्वार्थपरता ही प्रतिद्वंदिता का मूल कारण है, और प्रतिद्वंदिता सब प्रकार की स्पर्धामूलक संस्थाओं का आधार है और स्पर्धा के नियमों का उद्गम है । अतएव यह स्पष्ट है कि सब स्पर्धा मूलक संस्थाएँ और मनुष्यों के पारस्परिक संग्राम की वाह्य क्रियाएँ उस वृक्ष की पत्तियाँ और शाखाएँ है जो समस्त भूमंडल पर फैल जाता है, जिसकी जड़ व्यक्तिगत स्वार्थपरता है और जिसके पके हुए फल दुःख और शोक हैं । केवल शाखाओं को काट छाँट कर हम इस वृक्ष का सर्वनाश नहीं कर सकते । यदि हम इस वृक्ष का सर्वनाश करना चाहते हैं तो हमको जड़ को नष्ट कर देना चाहिए । वाह्य परिस्थितियों को बदलना शाखाओं को काटने के समान है, जिस प्रकार वृक्ष की कुछ शाखाओं को काटदेने से बाक़ी बची हुई शाखाओं में अधिक बल आ जाता है, इसी प्रकार जो उपाय प्रतिद्वंदिता के संग्राम को बंद करने के अभिप्राय से उस संग्राम के केवल वाह्य परिणामों को नष्ट करने के लिए किये जाते हैं, वे उस वृक्ष के बल को और भी बढ़ा देते हैं जिस की जड़ें मनुष्य के हृदय में निरंतर वृद्धि पाती रहती है । सरकारी नियम भी केवल शाखाओं को काँट-छाँट सकते हैं जिससे वृक्ष की वृद्धि नियमानुसार और एक सी हो । इस से अधिक सरकारी नियम कुछ नहीं कर सकते ।

अब विदेशों में एक ऐसे नगर की स्थापना करने का प्रयत्न हो रहा है, जिसको हम 'उद्यानों का नगर' कह सकें, अर्थात् जिसमें जगह जगह पर सुंदर उद्यान और कुंज बने हुए हों और जिसमें मनुष्य सुख और शान्ति पूर्वक रह सकें। यदि ऐसे प्रयत्न निःस्वार्थ प्रेम के कारण किये जाँय, तो वे सचमुच प्रशंसनीय हैं, परन्तु ऐसे नगर से उस समय तक कोई लाभ नहीं हो सकता जब तक कि उसके अधिकांश निवासी अपनी आंतरिक स्वार्थपरता को दूर न कर दें, यदि उसके निवासियों में एक प्रकार की स्वार्थपरता अर्थात् आत्मभोग की इच्छा भी हुई, तो यह इच्छा उस नगर को जड़ से खोद डालेगी, उसके उद्यानों को मिट्टी में मिला देगी, उसके सुन्दर महलों में प्रतिद्वंदिता का बाज़ार गरम हो जायगा और प्रत्येक मनुष्य अपनी विषय-वासनाओं की पूर्ति करने में लग जायगा, उसकी सार्वजनिक इमारतों में झगड़ों को रोकते और शान्ति स्थापित करने की संस्थाएँ खुल जायँगी, और उसके सार्वजनिक मैदानों में क़ैदखानों, अनाथालय और लूले-लँगड़ों तथा अंधों के रहने के मकान बन जायँगे, कारण कि जहाँ पर आत्म-भोग की इच्छा मौजूद है, वहाँ पर उसको पूरा करने के उपाय भी तुरंत किये जायँगे और समाज के अथवा दूसरों के हित पर कुछ ध्यान न दिया जायगा क्योंकि स्वार्थपरता मनुष्य को अंधा बना देती है ऐसी दशा में स्वार्थपरता के दुष्परिणाम भी मनुष्यों को शीघ्र ही भोगने पड़ेंगे।

जब तक मनुष्य यह न सीख जाँय कि आत्म-रक्षा से आत्म-त्याग अच्छा है और जब तक वे अपने हृदयों में निःस्वार्थ प्रेम

रूपी उद्यान का नगर स्थापित न कर लें, तब तक केवल सुख दायक प्रासादों के बना देने से तथा सुंदर उद्यानों के लगा देने से ' उद्यानों का नगर ' नहीं बन सकता । जब बहुत से पुरुष तथा स्त्रियाँ स्वार्थ-त्याग सीख जाँयगे, तब अवश्य ही ' उद्यानों का नगर ' बन जायगा और वह फूले फलेगा और उसमें बहुत शान्ति फैलजायगी, क्योंकि जीवन की बातों की उत्पत्ति हृदय से होती है ।

हमको यह मालूम हो गया कि सारी प्रतिद्वंद्विता और संग्राम का मूल कारण स्वार्थपरता है । अब यह प्रश्न उठता है कि इस कारण को किस प्रकार दूर कर सकते हैं, क्योंकि यह बात स्वाभाविक है कि कारण के नष्ट हो जाने से उसके परिणाम भी नहीं रहते, और कारण के विद्यमान रहने से उसके समस्त परिणाम बने रहते हैं, चाहे हम उनके बाह्य स्वरूप को कितना ही बदल दें । जिस मनुष्य ने जीवन की समस्या पर तनिक भी बारीकी से विचार किया है, और सहानुभूति की दृष्टि से मनुष्य जाति के दुःखों की आलोचना की है, उसे मालूम हो गया होगा कि स्वार्थपरता ही समस्त दुःखों का कारण है । सच तो यों है कि प्रत्येक विचारवान मनुष्य के मस्तिष्क में पहले पहल यही बात प्रवेश करती है, जब मनुष्य को यह बात मालूम हो जाती है तब उसके मन में स्वार्थपरता पर विजय प्राप्त करने के उपाय खोजने की इच्छा भी उत्पन्न होती है, फिर उस मनुष्य के मस्तिष्कमें पहले पहल एक ऐसा बाह्य नियम बनाने का अथवा समाज का एक ऐसा नया संगठन करने का विचार उठता है जिसके द्वारा दूसरों की स्वार्थपरता का अंत हो जाय । इसके बाद

उसके मस्तिष्क में एक दूसरा विचार उठता है वह यह है कि उसे यह प्रतीत होने लगता है कि उसके मार्ग में स्वार्थपरता की विशाल और दृढ़ भित्ति खड़ी है और वह असहाय है। उसके मस्तिष्क के इन दोनों विचारों का कारण यह है कि उसे स्वार्थ-परता का ठीक ठीक अर्थ नहीं मालूम होता। और उसे स्वार्थ परता का ठीक ठीक अर्थ इसलिए मालूम नहीं होता कि यद्यपि उसने स्वार्थपरता की मोटी मोटी बातों को हृदय से निकाल दिया है और उसके हृदय में उतनी ही पवित्रता आ गई है, तथापि स्वार्थपरता की बहुत सी बारीक बातें उसके हृदय में अब भी मौजूद हैं। जब वह अपने आप को असहाय समझने लगता है तब वह निम्न लिखित दो कामों में से एक काम अवश्य करता है। या तो वह मनुष्य निराश हो कर बैठ जाता है और फिर वैसा ही स्वार्थी बन जाता है या वह कठिनाई से छुटकारा पाने के लिए कोई दूसरा उपाय सोचता है। और वह दूसरा उपाय अवश्य ही खोज लेता है। संसार की बातों पर अधिक बारीकी के साथ विचार करने से, उन पर ध्यान देने से उनकी परीक्षा और आलोचना करने से, प्रत्येक कठिनाई और समस्या को अपने मस्तिष्क की सारी शक्ति लगा कर हल करते करते और प्रति दिन सत्य पर प्रेम बढ़ाते बढ़ाते, उसकी विचार-शक्ति बढ़ जाती है और अंत में वह यह मालूम कर लेता है कि स्वार्थपरता को नष्ट करने का उपाय यह नहीं है कि उसके एक रूप को दूसरे मनुष्यों में नष्ट कर दें, किन्तु हमको अपने हृदय से उसका सर्वथा बहिष्कार करदेना चाहिए।

इस यथार्थ बात का (सत्य का) पता लग जाने से आत्मा

में ज्ञान का प्रकाश हो उठता है और जब एक बार हम को यह बात प्राप्त हो जाती है तब हम को मुक्ति के मार्ग का पता लग जाता है और मुक्तिधाम का द्वार दूर पर दृष्टिगोचर होने लगता है। तब मनुष्य अपने जी में यह सोचता है, मैं दूसरों को स्वार्थी कहता था किन्तु अपनी स्वार्थ परता को न देखता था। मैं अपनी स्वार्थपरता को दूर किये बिना ही दूसरे से कैसे कहता था कि तुम लोग अपनी स्वार्थपरता को दूर कर दो? जब मनुष्य इन शब्दों के अनुसार चलता है और अपने कामों की तीव्र आलोचना करता है, परन्तु दूसरों के कामों की नहीं करता, तब उसे प्रतिद्वंदिता के नरक से निकलने का मार्ग मिल जाता है और प्रतिद्वंदिता के नियम उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। उस को प्रेम का नियम, जो अधिक श्रेष्ठ है, मिल जाता है। प्रेम के नियम के अनुसार चलने से बुरी बातें उससे कोसों दूर भागती हैं और उस के सामने वे सुख सदा हाथ बाँधे खड़े रहते हैं जिनको स्वार्थी मनुष्य वृथा ही खोजते हैं। इतना ही नहीं किंतु अपनी उन्नति करके वह संसार की उन्नति कर सकता है। उसको देख कर बहुत से मनुष्य मुक्ति के मार्ग को पहिचानेंगे और उस के जीवन का यह प्रभाव पड़ेगा कि मिथ्यात्व में लोगों के फँसाने की उतनी शक्ति न रहेगी।

यहाँ पर एक प्रश्न किया जा सकता है—क्या उस मनुष्य को, जिसने स्वार्थपरता को जीत लिया है और जो फलतः प्रतिद्वंदिता के संग्राम से छुटकारा पा गया है, दूसरों की स्वार्थपरता और प्रतिद्वंदिता से हानि न पहुँचेगी? इतना कष्ट उठा कर अपने आप को पवित्र करने के बाद क्या उसको अपवित्र

मनुष्यों से हानि न पहुँचेगी ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नहीं, कदापि नहीं। ईश्वर का न्याय अटल है, उसे कोई पलट नहीं सकता। इसलिए यह असंभव है कि जिस मनुष्य ने स्वार्थपरता को जीत लिया है उस पर उन नियमों का प्रभाव पड़ सके जो स्वार्थपरता से सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी ही स्वार्थ-परता के कारण हानि उठानी पड़ती है। यह सच है कि सब स्वार्थी मनुष्य प्रतिद्वंदिता के नियमों से बँधे हुए हैं और सब मिल कर हानि उठाते हैं अर्थात् प्रत्येक मनुष्य दूसरों के दुखों का न्यूनाधिक उपादान कारण बन जाता है और ऊपरी दृष्टि से यह मालूम होता है कि मानो मनुष्यों को दूसरों के पापों का दंड मिलता है, न कि अपने ही पापों का। परन्तु असल में बात यह है कि संसार समता के आधार पर क़ायम है और वह तभी चल सकता है जब उसके सब अंग एक दूसरे से मिल कर काम करें। इस संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने ही पापों के कारण दुःख उठाता है; उसके पापों के कारण किसी दूसरे को हानि नहीं पहुँच सकती। प्रत्येक मनुष्य अपने ही कर्मों का फल भोगता है, दूसरों के कर्मों का नहीं। हाँ, यदि वह किसी दूसरे मनुष्य के समान कर्म करेगा, तो वह उसी के समान फल भोगेगा। परन्तु यदि वह उन कर्मों को छोड़ दे और उनसे उत्तमतर कर्म करने लग जाय, तो उसे फिर वैसा फल न भोगना पड़ेगा।

अब हम वृक्ष के दृष्टान्त की ओर लौटते हैं। जिस प्रकार पत्तियाँ और शाखाएँ जड़ों के सहारे बढ़ती हैं, उसी प्रकार जड़ें

अपना भोजन पृथ्वी से प्राप्त करती हैं। इसी नियम के अनुसार स्वार्थपरता, जो पाप और दुःख रूपी वृक्ष की जड़ है, अपना भोजन अज्ञान की भूमि से प्राप्त करती है, इसी मिट्टी में वह बढ़ती और फूलती फलती है । अज्ञान से मेरा अभिप्राय निरक्षरता नहीं है। इस शब्द से मेरा अभिप्राय और ही कुछ है और वह पाठकों को आगे चल कर मालूम हो जायगा ।

स्वार्थी मनुष्य सदा अंधकार में रहता है। वह ज्ञान रहित होता है । स्वार्थपरता एक ऐसा अवगुण है कि उसके कारण वह मनुष्य ज्ञान के मार्ग से बहुत दूर जा पड़ता है। स्वार्थपरता के कारण मनुष्य अंधा हो जाता है, कुछ ऊँच नीच नहीं समझता और किसी सिद्धान्त के अनुसार काम नहीं करता और इसी लिए वह प्रतिद्वंदिता के उन नियमों से जकड़ जाता है। जिनके द्वारा मनुष्यों को इसलिए कष्ट उठाना पड़ता है कि संसार में समता अर्थात् परस्पर मेल जोल बना रहे। जिस संसार में हम रहते हैं उसमें सब प्रकार के हितकर पदार्थ मौजूद हैं। आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक हित करने वाले पदार्थों का यहाँ पर इतना बाहुल्य है कि इस संसार के प्रत्येक पुरुष और स्त्री को जितने हितकर पदार्थों की आवश्यकता हैं वे सब उसे मिल सकते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु प्रत्येक मनुष्य जितने पदार्थ चाहे उतने ही ले सकता है और फिर भी बहुत पदार्थ बच रहेंगे। यह सब होने पर भी हम अज्ञान का कैसा विचित्र दृश्य देखते हैं! हम एक ओर तो यह देखते हैं कि करोड़ों पुरुष और स्त्रियाँ दासत्व के बंधन में बँधे हुए हैं और पेट भरने के लिए रूखा सूखा भोजन और

शरीर ढकने के लिए वस्त्र प्राप्त करने के अर्थ रात दिन परिश्रम करते हैं ; और दूसरी ओर हम ऐसे हज़ारों मनुष्यों को देखते हैं जिन्होंने धनाढ्य घरों में जन्म लिया है और जिनके पास आवश्यकता से अधिक धन मौजूद है, परन्तु फिर भी उनको अधिक धन प्राप्त करने की ऐसी धुन सवार है कि वे सच्चे जीवन के सुखों से और उन सुयोगों से, जो उनको धनाढ्य होने के कारण मिल सकते हैं, वंचित रह जाते हैं। सच तो यों है कि मनुष्यों में पशुओं से अधिक बुद्धिमत्ता नहीं है क्योंकि पशुओं के समान वे भी उन पदार्थों को प्राप्त करने के लिए झगड़ते हैं जो उन सब की आवश्यकताओं से भी अधिक हैं और जिनको वे सब शान्ति पूर्वक अपने उपयोग में ला सकते हैं।

ये सब बातें उसी समय होती हैं जब घोर अज्ञान होता है। जब अज्ञानरूपी अंधकार इतना घोर होता है कि केवल बुद्धि-मान और पवित्र हृदय वाले मनुष्य ही अपनी स्वार्थरहित दृष्टि से उसके पार देख सकते हैं। मकान, भोजन और वस्त्र प्राप्त करने के लिए मनुष्य जो दौड़ धूप कर रहे हैं उसके साथ ही न्याय का अदृश्य और व्यापक नियम काम कर रहा है। यही नियम प्रत्येक मनुष्य को उसके पाप और पुण्य का फल देता है। यह नियम निष्पक्ष है ; न तो किसी पर दया करता है और न किसी को अनुचित दण्ड देता है। हम को अपने शुभाशुभ कर्मों का फल चाहे तुरंत ही मिले चाहे कुछ समय बाद, परन्तु मिलता अवश्य है।

धनी और निर्धन दोनों को अपनी अपनी स्वार्थपरता का

एक सा दंड मिलता है । इस दंड से कोई बच नहीं सकता । जिस प्रकार निर्धन मनुष्यों को दुख उठाने पड़ते हैं, इसी प्रकार धनाढ्य मनुष्यों के पीछे भी किसी न किसी तरह के दुःख लगे हुए हैं । इसके सिवाय धनाढ्य मनुष्य धन खोते जाते हैं और निर्धन मनुष्य धनी होते जाते हैं । जो मनुष्य आज निर्धन है वह कल धनी हो जाता है और जो मनुष्य आज धनाढ्य है वह कल निर्धन हो जाता है । नरक की कोई बात स्थायी नहीं है और न वहाँ पर जान, माल की ख़ैर है । वहाँ पर सदा किसी न किसी प्रकार का दुख भोगना पड़ता है; केवल बीच बीच में थोड़ी देर के लिए कभी चैन मिल जाता है । वहाँ पर भय छाया की तरह मनुष्य के पीछे लगा रहता है, क्योंकि जब मनुष्य स्वार्थपरता के वशीभूत होकर कोई पदार्थ प्राप्त करते हैं तब उनको उसके छिन जाने का सदा डर बना रहता है । इसी प्रकार निर्धन मनुष्य, जो स्वार्थपरता के कारण धन की खोज में लगे रहते हैं, पुनः कंगाल हो जाने के भय से दुखी रहते हैं । इसके सिवाय प्रत्येक मनुष्य को, जो संग्राम के इस निम्न लोक में रहता है, एक बड़ा डर लगा रहता है, और वह डर मौत का डर है ।

जो मनुष्य अज्ञान के अंधकार से घिरे हुए हैं और उन अटल सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं रखते, जो सब पदार्थों की उत्पत्ति और सत्ता के कारण हैं, उनको यह भ्रम रहता है कि जीवन के परमावश्यक पदार्थ भोजन और वस्त्र हैं और उनका पहला कर्तव्य इनको प्राप्त करना है । वे इन्हीं वाह्य पदार्थों को सुख का कारण समझते हैं । आत्म-रक्षा के अंध-विचार के कारण

प्रत्येक मनुष्य अपनी जीविका प्राप्त करने में दूसरे मनुष्यों का मुक़ाबला करता है, क्योंकि वह यह समझता है कि यदि वह दूसरे मनुष्यों से चौकन्ना न रहेगा और उनके साथ बराबर युद्ध न करता रहेगा, तो वे उसकी जीविका छीन लेंगे।

यह प्रथम और मूल भ्रम है। इससे अनेक भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं और फिर इन भ्रमों के कारण मनुष्य संसार में अनेक दुख भोगते हैं। वस्त्र तथा भोजन न तो जीवन के आवश्यक अंग हैं और न सुख का कारण हैं। वे अनावश्यक पदार्थ हैं और परिणाम हैं। उनकी उत्पत्ति आवश्यक अंगों से (व्यापक कारण से) होती है। जीवन की आवश्यक बातें सत्यनिष्ठा, भक्ति, पवित्रता, आत्मत्याग, दया, प्रेम इत्यादि हैं, जो सच्चरित्रता के आधार हैं, और इन्हीं से सब अच्छी बातों की उत्पत्ति होती है। भोजन, वस्त्र और धन निष्क्रिय परिणाम हैं। उनमें कोई निजी शक्ति नहीं है। उनको शक्ति हम प्रदान करते हैं। वे हमको अपने आप न तो लाभ पहुँचा सकते हैं और न हानि। यह शरीर भी, जिसको मनुष्य अपना समझते हैं, जिसके वे दास बने रहते हैं और जिसको वे त्यागना नहीं चाहते, एक दिन मिट्टी में मिल जायगा। परन्तु चरित्र की ऊँची बातें इन से सर्वदा भिन्न हैं। उनको जीवन का सार कहना चाहिए। उन पर चलना, उनके भक्त बनना और उन्ही में तन्मय रहना मोक्ष को प्राप्त करना है।

जो मनुष्य यह कहता है कि "पहले मैं अपनी आवश्यकता के अनुसार द्रव्योपार्जन करूँगा और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करूँगा तब मैं इन ऊँची बातों पर ध्यान दूँगा" वह इन ऊँची

बातों को नहीं समझता अथवा उनको ऊँची नहीं खयाल करता, क्योंकि यदि वह इन बातों को ऊँची खयाल करता तो वह इन को उपेक्षा की दृष्टि से न देखता। वह बाह्य पदार्थों को ऊँचा समझता है और इसलिए पहले उनको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। वह धन, वस्त्र, भोजन और प्रतिष्ठा को परम आवश्यक और अत्यन्त महत्व पूर्ण समझता है और पवित्रता तथा सत्य को नीचे दरजे की चीज़ें समझता है, क्योंकि मनुष्य जिन बातों का छोटा समझता है उनका उन बातों पर न्योछावर कर देता है जिन को वह बड़ा समझता है। ज्योंही मनुष्य यह समझ जाता है कि पवित्र जीवन व्यतीत करना भोजन और वस्त्र प्राप्त करने से अधिक महत्व का है, त्योंही वह भोजन, वस्त्र इत्यादि की धुन छोड़ देता है और पवित्रता को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लेता है। बस यहीं पर वह नरक की सीमा से निकल कर मोक्ष की सीमा में पदार्पण करता है।

जब मनुष्य पवित्रता की उत्तमता और यथार्थता को समझ जाता है तब अपने विषय में, दूसरों के विषय में, बाह्य बातों के विषय में तथा आंतरिक बातों के विषय में उसके विचार सर्वथा बदल जाते हैं। वह आत्मप्रेम के बंधन से धीरे धीरे मुक्त हो जाता है। आत्मरक्षा का विचार उसके मन से दूर होने लगता है और उसके स्थान में वह आत्मत्याग करना सीख जाता है। वह अपने हित के लिए दूसरों के सुख को न्योछावर करना छोड़ देता है, किन्तु अब दूसरों के हित के लिए अपने आप को और अपने सुख को समर्पण करने लगता है। इस प्रकार आत्मप्रेम को त्याग कर वह प्रतिद्वंदिता के संग्राम से

छुटकारा पा जाता है, क्योंकि इस संग्राम का कारण आत्मप्रेम ही है। प्रतिद्वंदिता के नियमों का प्रभाव भी उसके ऊपर नहीं पड़ता, क्योंकि ये नियम आत्मप्रेम से संबंध रखते हैं, वह उस मनुष्य के समान हो जाता है जो पर्वत पर चढ़ गया है और इस लिए नीचे की घाटियों की खलबली से उसे छुटकारा मिल गया है। बादल बरसते और गरजते हैं, बिजली चमकती है, कुहरा घिर जाता है और आँधियाँ वृक्ष इत्यादि को जड़ से उखाड़ देती और नष्ट कर देती हैं, परन्तु वे उस तक नहीं पहुँच सकतीं, क्योंकि वह बहुत ऊँचा चढ़ गया है। वह ऐसी जगह पर पहुँच गया है जहाँ पर सदैव प्रकाश तथा शान्ति बनी रहती है।

निम्न श्रेणी के नियम ऐसे मनुष्य के जीवन से बहुत दूर रहते हैं। वह मनुष्य अब एक ऊँचे नियम की सीमा में आ जाता है और यह ऊँचा नियम प्रेम का नियम है। इस नियम का पालन करने से उसे उचित समय पर अपने सुख की सभी आवश्यक सामग्री मिल जाती है। संसार में नाम पैदा करने का विचार उसके मन में नहीं आ सकता और वह धन, भोजन वस्त्र इत्यादि बाह्य पदार्थों को अपने ध्यान में भी नहीं लाता। वह अपने आप को परोपकार में लगा देता है, वह शुभ फल की प्राप्ति का विचार किये बिना ही सत्यनिष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करता है और प्रति दिन पवित्रता के शासन में अपना जीवन व्यतीत करता है। बाकी के सब काम उचित समय पर और उचित रीति से होते रहते हैं। जिस प्रकार दुःख और संग्राम की उत्पत्ति उनके मूल कारण स्वार्थपरता से

होती है, इसी प्रकार सुख और शांति की उत्पत्ति उनके मूल कारण पवित्रता से होती है। और यह सुख भरपूर और सर्वांगपूर्ण होता है।

ऐसा मनुष्य स्वतंत्र होता है, क्योंकि उसे चिंता, भय, निराशा इत्यादि मानसिक विकारों से, जिनकी उत्पत्ति स्वार्थपरता के कारण होती है, छुटकारा मिल जाता है और वह प्रतिद्वंदिता के संग्राम के बीच में भी अनंत सुख और शांति के साथ जीवन व्यतीत करता है। वह नरक के बीच में चलता रहता है, परन्तु नरक की अग्नि उसकी ओर नहीं दौड़ती, किन्तु उस की ओर से अपनी लपट को फेर लेती है और उसके सिर का एक बाल तक नहीं जलता। वह स्वार्थपरता रूपी सिंहों के बीच में फिरता रहता है, परन्तु उसके सामने उन सिंहों का मुँह बंद हो जाता है और उनका क्रोध शांत [illegible] जाता है। उसके चारों ओर जीवन के घोर संग्राम में मनु[illegible] मरते चले जाते हैं, परन्तु उसका कुछ नहीं बिगड़ता और न [illegible] भय मालूम होता है, क्योंकि उसके पास तक न तो कोई प्राणघातक गोली पहुँच सकती है और न कोई विषैला तीर उसकी पवित्रता के दृढ़ कवच के पार हो सकता है। दुःख, चिंता, भय और न्यूनता के तुच्छ, व्यक्तिगत और स्वार्थमय जीवन को खो कर, उसने सुख और [illegible] विस्तीर्ण, श्रेष्ठ और सर्वांग पूर्ण जीवन को प्राप्त [illegible] हित के लिए दूस[illegible] इन बातों की चिन्ता न करो कि हम [illegible] दूसरों के [illegible]और क्या पहनेंगे। पहले मोक्ष और पवित्रता की खो[illegible] करने [illegible]र ये सब बातें तुमको प्राप्त हो जायँगी।

एक सिद्धान्त की खोज ।

ब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है? वह किस उपाय से उस प्रकाश को प्राप्त कर सकता है, जो अंधकार के हटाने का एक मात्र साधन है? और वह किस रीति से उस आन्तरिक स्वार्थपरता को जीत सकता है जो उसको जकड़े हुए है और उसके रोम रोम में समा गई है?

मोक्ष की प्राप्ति का उपाय यह है कि मनुष्य अपने आप को पवित्र करे और यह तभी हो सकता है जब वह अपने गुणों और अवगुणों की अपने भीतर खोज करे, स्वार्थपरता को तभी दूर किया जा सकता है जब [illegible] लिया जाय और उसका यथार्थ ज्ञान [illegible] और प्रति दिन [illegible] जब तक मनुष्य स्वार्थी बना रहे [illegible] त करता है। बाकी के [illegible] स्वार्थपरता [illegible] दूर नहीं कर सकता। स्वा[illegible] उचित [illegible] अपने आप भी नहीं जा सकती। अंधकार उसी समय जाता है जब प्रकाश आता है। इसी प्रकार अज्ञान

को दूर करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है और स्वार्थपरता को दूर करने के लिए प्रेम की। चूँकि स्वार्थपरता में न तो श्रेय है और न शान्ति, इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए हमको एक ऐसा सिद्धान्त खोजना पड़ेगा जो पवित्र और स्थायी हो और जिस पर चलने से मनुष्य सुरक्षित रह सके और स्वार्थ-साधन के दासत्व से मुक्त हो जाय। जब मनुष्य अपनी आत्मा में से स्वार्थवासनाओं को निकाल देगा तभी उसकी आत्मा पवित्र बन सकेगी। उसको यह समझ लेना चाहिए कि स्वार्थ-परता ऐसी चीज़ नहीं है कि उस से संबंध रक्खा जाय और उसका दासत्व स्वीकार किया जाय : पवित्रता ही इस योग्य है कि मनुष्य उसे अपने हृदय-सिंहासन पर विराजमान करे और उसे अपने जीवन का स्वामी बनावे। इसके लिए मनुष्य में भक्ति का होना आवश्यक है, क्योंकि भक्ति के बिना न तो उन्नति हो सकती है और न सिद्धि। उसको इस बात पर श्रद्धा होनी चाहिए कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए पवित्रता परमावश्यक और सर्वोत्कृष्ट है और सत्यनिष्ठा परम उपयोगी है। उसे पवित्रता और दयालुता को अपना लक्ष्य बना लेना चाहिए और उनकी प्राप्ति के लिए अविश्रान्त उद्योग करना चाहिए। उसे अपनी श्रद्धा को बढ़ाते रहना चाहिए और उससे कभी विचलित न होना चाहिए। श्रद्धा के दीपक के बिना वह अंधकार में कुछ न देख सकेगा। ज्यों ज्यों श्रद्धा रूपी दीपक का प्रकाश बढ़ता जायगा त्यों त्यों उस मनुष्य में कार्यकुशलता, दृढ़प्रतिज्ञा और आत्मनिर्भरता के गुण आते जायँगे और क़दम क़दम पर उसकी उन्नति की गति बढ़ती जायगी और अंत में यह होगा कि श्रद्धा-रूपी दीपक के स्थान में ज्ञान रूपी प्रकाश आ जायगा और फिर

इस प्रकाश की तेज़ी के सामने अंधकार का लोप होता चला जायगा । पवित्र जीवन के सिद्धान्त उसकी समझ में आते जायँगे और ज्यों ज्यों वह उनके अनुसार चलेगा त्यों त्यों वह उन सिद्धान्तों के अद्वितीय सौन्दर्य को देखकर चकित होता जायगा और उसके हृदय में ऐसा हर्ष उत्पन्न होगा जिसे उसने पहले कभी अनुभव नहीं किया ।

अपने आप को वश में रखने से और अपने आप को पवित्र रखने से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। यही मोक्ष-मार्ग है और जो आत्मा मोक्ष की अभिलाषा रखती है उसे इसी मार्ग पर चलना पड़ेगा । यह मार्ग इतना सकड़ा है और इस के द्वार पर स्वार्थपरता की इतनी ऊँची ऊँची घास खड़ी है कि इस मार्ग को खोज निकालना बहुत कठिन है और यदि यह मार्ग मिल भी जाय तो प्रतिदिन ध्यानाभ्यास किये बिना इस मार्ग पर कोई मनुष्य नहीं चल सकता ध्यान के बिना शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और फिर मनुष्य में आगे बढ़ने की ताक़त नहीं रहती । जिस तरह बाह्य पदार्थों के खाने से शरीर पुष्ट और बलवान होता है इसी तरह आत्मा भी अपने भोजन से अर्थात् आध्यात्मिक बातों का ध्यान करने से सशक्ति और सतेज होती है ।

इसलिये जिस मनुष्य ने मोक्ष प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है उसको ध्यानाभ्यास शुरू कर देना चाहिए और अपने हृदय, मस्तिष्क तथा जीवन की टटोल करनी चाहिए और यह देखना चाहिये कि उन में कोई बात ऐसी तो नहीं है जो उस के मार्ग में रुकावट पैदा करती हो । मोक्ष-मार्ग में उसे तीन द्वार

मिलेंगे और इन द्वारों में हो कर उसे जाना पड़ेगा। पहले द्वार पर उसे वासनाओं का त्याग करना पड़ेगा, दूसरे द्वार पर मन (रुचि या मंतव्य) का त्याग करना पड़ेगा । तीसरे द्वार पर ममत्व का त्याग करना पड़ेगा ध्यानाभ्यास करते करते वह अपनी वासनाओं की जाँच पड़ताल करने लगेगा। वह यह देखेगा कि उसके मस्तिष्क में वासनायें कैसे उत्पन्न होती हैं और फिर उन वासनाओं का उसके जीवन और चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ता है। उसको शीघ्र ही मालूम हो जायगा कि इच्छाओं का त्याग किये विना मनुष्य अपना तथा अपनी परिस्थितियों का दास वना रहता है। यह मालूम करके वह पहले द्वार में प्रवेश करता है। इस द्वार से आगे बढ़ कर वह आप को वश में रखने का अभ्यास करता है और यही आत्मा को पवित्र करने का पहला उपाय है। अब तक वह पशुओं के समान दासत्व में बँधा हुआ था और अपनी वासनाओं के अनुसार खाता, पीता, सोता और मौज उड़ाता था उसकी वासनायें उसे नाच नचाती थीं और वह आँखें बंद करके उनके इशारों पर नाचता था वह विना किसी नियम के अंधाधुंध काम करता था और अपने चरित्र की कभी जाँच पड़ताल न करता था उसके जीवन का कोई उद्देश्य न था जिसके अनुसार वह अपने चरित्र और जीवन का संगठन करता। परन्तु अब वह मनुष्य के समान जीवन व्यतीत करता है वह अपनी वासनाओं को रोकता है, अपनी कषायों को वश में रखता है और स्थिरचित्त हो कर धर्म-साधन में लगजाता है। वह भोग विलास को छोड़ देता है और बुद्धि से काम लेता है और अपने चरित्र को किसी आदर्श के अनुसार बनाता है। जब वह अपने जीवन को इस प्रकार नियमानुसार

बना लेता है तब उसे यह मालूम होता है कि उसे अपनी कुछ आदतों को त्याग देना चाहिए। वह यह निश्चय करता है कि मैं अमुक अमुक पदार्थ खाया करूँगा और अमुक अमुक अभक्ष्य पदार्थ न खाऊँगा। वह भोजन करने के समय बाँध लेता है और खाने के पदार्थों का दर्शन करते ही चाहे जब भोजन करने नहीं बैठता। वह अब प्रति दिन उतनी वार भोजन नहीं करता जितनीवार पहले करता था और इस के साथ ही वह अपने भोजन की मात्रा को भी कम कर देता है। वह अब अपना समय आलस्य में बिताने के लिये रात में या दिन में चाहे जब नहीं सोता, किन्तु वह अपने शरीर को उतना ही आराम देता है जितना उसे आवश्यक है इस लिये वह अपने सोने का समय नियत कर लेता है सवेरे जल्दी उठता है और जब सबेरे उसकी आँख खुल जाती है तो वह पलँग पर आलस्य में पड़ा नहीं रहता। वह खाने पीने के उन सब पदार्थों को सर्वथा त्याग देता है जो नशीले हैं अथवा जिन से मनुष्य पेटू या कठोर हो जाता है। वह सादा भोजन करता है, जिसका प्रकृति में इतना बाहुल्य है।

वह इन प्राथमिक वातों के अनुसार तुरंत ही काम करने लगेगा। वह आत्मसंयम और आत्मान्वेषण के मार्ग पर ज्यों ज्यों बढ़ेगा त्यों त्यों उसे इस बात का पता लगता जायगा कि वासनाएँ कैसी होती हैं और उनके परिणाम कैसे होते हैं। अंत में उसे यह मालूम होगा कि वासनाओं को (इच्छाओं को) केवल वश में रखना यथेष्ट नहीं है, किन्तु उनको सर्वथा त्याग देना चाहिए, उनको मस्तिष्क से वहिष्कृत कर देना चाहिए और अपने चरित्र तथा जीवन से उनका सम्बन्ध बिलकुल

तोड़ देना चाहिए। इस स्थान पर पहुँच कर उसकी आत्मा प्रलोभन की अँधेरी घाटी में घुसेगी, क्योंकि जब तक इन वासनाओं से युद्ध न किया जायगा और जब तक ये अपने पहले अधिकार को पुनः प्राप्त करने का भरपूर उद्योग न कर लेंगी तब तक इन वासनाओं का अंत न होगा। ऐसे अवसर पर श्रद्धा के दीपक को तेल बत्ती से बराबर दुरुस्त रखना चाहिए क्योंकि वह जितना प्रकाश दे सकेगा उस सबकी यात्री को आवश्यकता होगी। यह प्रकाश उस यात्री को घाटी के घोर अंधकार में रास्ता दिखलायेगा और उसको उत्साहित करेगा। पहले तो उसकी वासनाएँ अपनी पूर्ति के लिए जंगली पशुओं के समान गुर्रायेंगी, परन्तु जब वे इस प्रकार सफल मनोरथ न होंगी तब वे उस मनुष्य को पछाड़ने के लिए उसे युद्ध करने का प्रलोभन देंगी। और यह दूसरा प्रलोभन पहले प्रलोभन से बड़ा होगा और इस पर विजय प्राप्त करना भी अधिक कठिन होगा, क्योंकि जब तक उनको सर्वथा उपेक्षा की दृष्टि से न देखा जायगा तब तक वे ठंडी न पड़ेंगी। जब तक उनकी सर्वथा अवहेलना न की जायगी, उनका परित्याग न किया जायगा और उनको भूकों न मारा जायगा तब तक उनका अंत न होगा। इस घाटी में से गुज़रते समय उस मनुष्य को कुछ शक्तियों की वृद्धि करनी पड़ेगी जो उसको आगे बढ़ने में सहायता देंगी। ये शक्तियाँ आत्म-संयम, आत्मनिर्भरता, निर्भयता और विचार-स्वातंत्र्य हैं। यहाँ पर उसे उपहास और मिथ्या दोषारोपण के बीच में होकर भी चलना पड़ेगा। यहाँ तक नौबत पहुँचेगी कि उसके कुछ गाढ़े मित्र, बल्कि वे मित्र भी, जिन पर उसका सर्वथा निःस्वार्थ प्रेम है, उस पर मूर्खता और अस्थिरता का

दोष आरोपित करेंगे और तरह तरह की दलीलों से उसे फिर उस जीवन की ओर लौटाने का भरपूर प्रयत्न करेंगे जो पाशविक वासनाओं, स्वार्थसाधन और तुच्छ व्यक्तिगत झगड़ों से भरा हुआ है। उसको जानने वाले प्रायः सभी मनुष्यों का अचानक यही विचार होगा कि वह मनुष्य भूल कर रहा है और वे उसे उसके पहले मार्ग पर लाने की चेष्टा करेंगे, क्योंकि वे अपने अज्ञान के कारण यह सोचेंगे कि वह मनुष्य अपने आनन्द और सुख को व्यर्थ ही खो रहा है । दूसरों के इन विचारों को जान कर पहले तो उस मनुष्य को बड़ा दुख होगा, परन्तु उसे फिर शीघ्र ही यह मालूम होगा कि इस दुःख का कारण उसी का मिथ्या घमंड और स्वार्थपरता है । उसने अपने विषय में दूसरों से प्रशंसा और बड़ाई प्राप्त करने की जो इच्छा की उसी का फल यह हुआ कि उसे दुख मिला। उसकी समझ में यह बात ज्यों ही आजायगी त्योंही उसके विचार और ऊँचे हो जायँगे और फिर ये बातें उसके पास भी न फटक सकेंगी और उसे दुख न दे सकेंगी। अब वह दृढ़ हो जायगा और मस्तिष्क की उन शक्तियों का उपयोग करने लगेगा जिन के नाम हम ऊपर ले चुके हैं । इस अवसर पर उसे साहस के साथ बढ़ना चाहिए ; न तो उसे अपने बाह्य मित्रों के कहने सुनने की परवाह करनी चाहिए और न उसे अपने आन्तरिक शत्रुओं के अपनी वासनाओं के गुर्राने पर ध्यान देना चाहिए। उसे सदा अपने आदर्श की ओर प्रेम की दृष्टि से देखते रहना चाहिए। प्रतिदिन अपने मस्तिष्क में से स्वार्थपरता के विचारों को और अपने हृदय में से अपवित्र वासनाओं को निकालते रहना चाहिए। चाहे वह मार्ग में ठोकर खाये और

गिर भी पड़े, परन्तु उसे सदा आगे बढ़ते और ऊपर उठते रहना चाहिए। रात के समय बड़ी शान्ति के साथ उसे दिन भर की यात्रा पर विचार करना चाहिए। यदि उसने दिन में असफलताओं का सामना करते हुए भी किसी बुरी वासनाओं से युद्ध किया है और वह उस युद्ध में हार गया है, तो भी उसे निराश न होना चाहिए। जिस मनुष्य ने अपने आप को वश में रखने पर कमर बाँध ली है वह एक दिन हानि उठा कर दूसरे दिन अवश्य सफलता प्राप्त करेगा।

घाटी को पार करके वह शोक और एकांत के मैदान में पहुँचेगा। चूँकि उसने अपनी वासनाओं को उठने नहीं दिया, इसलिए वे निर्बल पड़ गई हैं और अब उनका अंत होता जाता है, वह अब घाटी से निकल कर ऊपर चढ़ता जाता है और अब अंधकार भी कम हो गया है। परन्तु अब वह पहले पहल यह मालूम करेगा कि मैं अकेला हूँ। उसकी दशा उस मनुष्य के समान होगी, जो एक बड़े पर्वत के सब से नीचे के भाग पर खड़ा हुआ है और रात का समय है। उसके ऊपर पर्वत का ऊँचा शिखर है और इस शिखर की दूसरी तरफ़ आकाश में तारे चमक रहे हैं। नीचे की तरफ़ थोड़ी दूर पर उस नगर के दीपक टिमटिमा रहे हैं, जिसे वह पीछे छोड़ आया है। उस नगर के निवासियों की चिल्लाहट, हँसी, गाड़ियों की घड़घड़ाहट और गाने की तानों के मिश्रित शब्द उसके कानों तक आते हैं। उसे अपने मित्रों का खयाल आता है। उसके सब मित्र उसी नगर में हैं और अपने अपने भोग विलास में मस्त हैं। वह पर्वत पर अकेला है, वह नगर विषय-वासनाओं

का नगर है और वह पर्वत त्याग का पर्वत है। उस पर्वत पर चढ़नेवाले को अब मालूम हो जाता है कि मैंने संसार को छोड़ दिया है। अब उसके लिए संसार की चहल पहल और झगड़े निर्जीव हैं और उसको नहीं लुभा सकते। इस निर्जन स्थान में कुछ समय ठहर कर वह शोक का स्वाद चखेगा और उसके गुप्त रहस्य को समझेगा। वह कठोरता और घृणा को त्याग देगा, उसका हृदय नम्र हो जायगा और उसमें उस दया-भाव की जाग्रति होगी, जो कुछ समय बाद उसके जीवन का सर्वस्व बन जायगा। अन्य जीवधारियों को दुख में देख कर उसे स्वयं वैसा ही दुख मालूम होगा और ज्यों ज्यों उसका यह अनुभव बढ़ता जायगा त्यों त्यों वह दूसरों के प्रेम में अपने दुःख और एकान्त को भूलता जायगा और अंत में उन्हें सर्वथा भूल जायगा।

यहाँ पर वह यह भी समझने लगेगा कि वे गुप्त नियम, जिनके हाथ में व्यक्तियों और जातियों के भाग्य की बागडोर है, किस प्रकार काम करते हैं। उसने स्वयं प्रतिद्वंदिता और स्वार्थ-परता को छोड़ दिया है और इसलिए वह दूसरों की तथा संसार की प्रतिद्वंदिता और स्वार्थपरता को घृणा की दृष्टि से देख सकता है। उसे अब यह मालूम होगा कि स्वार्थमय प्रति-द्वंदिता संसार के दुखों की जड़ है। दूसरों के साथ तथा संसार के साथ उसका व्यवहार अब सर्वथा बदल जायगा और उसके मस्तिष्क में स्वार्थसाधन और आत्मरक्षा के स्थान में दया और प्रेम के भाव उत्पन्न हो जाँयगे। और इसका यह फल होगा कि उसके साथ संसार का व्यवहार भी बदल जायगा। इस अवस्था पर पहुँच कर उसे प्रतिद्वंदिता के दोष दिखाई देंगे और वह

दूसरों से बाज़ी ले जाने का उनसे आगे बढ़ने का प्रयत्न छोड़ कर उनको निःस्वार्थ विचारों से और आवश्यकता पड़ने पर प्रेममय व्यवहार से उत्साहित करेगा, वह उन लोगों के साथ भी ऐसा ही करेगा जो स्वार्थ के वश उससे स्पर्धा करते हैं; वह उनसे अपनी रक्षा करने की चेष्टा न करेगा। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह होगा कि संसार में उसका जीवन इतना अच्छा हो जायगा जितना पहले कभी नहीं हुआ था। उसके बहुत से मित्र, जो पहले उसका उपहास किया करते थे उसका आदर करेंगे और उससे प्रेम करेंगे, उसे अचानक इस नई बात का पता लगेगा कि उसका संबंध विरक्त और उच्च विचारों के मनुष्यों के साथ होता जाता है। जब उसका जीवन स्वार्थमय था तब उसको इन मनुष्यों के अस्तित्व का भी पता न था। ये मनुष्य दूर दूर से उसके पास सत्संग के लिए आवेंगे। सत्संग और भ्रातृभाव उसके जीवन के प्रधान अंग बन जायँगे। इस प्रकार वह शोक और निर्जनता के मैदान के पार हो जायगा।

प्रतिद्वंदिता के नियम अब उसके जीवन पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते और उसको असफलता, आपत्ति, कंगाली अथवा क़लई खुल जाने का भय नहीं रहता, क्योंकि ये प्रतिद्वंदिता के परिणाम हैं। उसने केवल स्वार्थपरता को ही अपने हृदय से नहीं निकाल दिया, किन्तु उसने मस्तिष्क की उन शक्तियों की उन्नति कर ली है जिनके द्वारा वह अपने काम पहले की अपेक्षा अच्छी तरह कर सकता है।

परन्तु वह अभी बहुत आगे नहीं बढ़ा है, और यदि वह

निरंतर चौकन्ना नहीं रहेगा तो संभव है कि वह किसी समय अंधकार और संग्राम के निम्न लोक में फिर गिर पड़े और उसके क्षणिक सुखों और वासनाओं में फँस जाय । यह भय उस समय सबसे अधिक होता है जब मनुष्य सब से बड़े प्रलोभन (संदेह के प्रलोभन) के बीच में पहुँचता है। दूसरे द्वार तक पहुँचने के पहले वह यात्री एक बड़े आध्यात्मिक मरुस्थल पर पहुँचेगा । इस मरुस्थल को हम संदेह का मरुस्थल कह सकते हैं । यहाँ पर आकर वह कुछ समय तक भटकता फिरेगा निराशा, निरुत्साह, अस्थिरता और उदासी उसको बादलों के समान घेर लेंगी जिनके कारण वह आगे के मार्ग को बिलकुल न देख सकेगा । उसके जी में कदाचित् एक नया और विचित्र भय भी पैदा हो जाय । वह यह सोचने लगेगा कि इस मार्ग पर चलना ठीक है या नहीं । संसार के प्रलोभन अत्यंत सुंदर रूप धारण करके उसके सामने फिर एक बार आ जायँगे और सांसारिक संग्राम की धूम-धाम उसे एक बार फिर अपनी ओर खींचना चाहेगी । "क्या मैं ठीक मार्ग पर चल रहा हूँ ? इस मार्ग पर चलने में क्या लाभ है ? क्या जीवन के प्रधान अंग विलास, आवेश और संग्राम नहीं हैं और क्या मैं इनको त्याग कर सर्वस्व को नहीं खो रहा हूँ ? क्या मैं जीवन भूरि को एक निरर्थक बात के पीछे नहीं गँवा रहा ? क्या यह संभव नहीं है कि मैं ने मूर्खता की हो और मैं धोके में फँस गया हूँ, और दूसरे मनुष्य, जिनका मुख्य उद्देश्य इन्द्रियों को सुख देना है, मुझ से अधिक बुद्धिमान हों ?" यहाँ पहुँच कर ऐसे ही संदेह और प्रश्न उसको कष्ट देंगे और उसे लुभायेंगे और फिर इन्हीं संदेहों के कारण वह जीवन की समस्याओं की गहरी छान बीन

में लगेगा और वह एक ऐसे स्थायी सिद्धान्त की आवश्यकता मालूम करेगा जिस पर चलने से वह सुरक्षित रहसके, इस लिए इस मरुस्थल में फिरने से उसके मस्तिष्क में बुद्धि विषयक बड़े बड़े भ्रम पैदा होंगे, और जब वह अपने आदर्श के साथ इन भ्रमों का मिलान करेगा तब वह सच और झूँठ की असल और नकल की, कारण और कार्य की, क्षणभंगुर वातों की और स्थायी सिद्धान्तों की परख करना सीखेगा ।

संदेह की मरुभूमि में उसे सब प्रकार के भ्रम होंगे । उसकी इन्द्रियों को भ्रम होंगे और उसके मस्तिष्क को सिद्धान्त और धर्म के विषय में भ्रम होंगे । इन भ्रमों की जाँच पड़ताल करने से और उनको दूर करने से वह और भी बड़ी बड़ी शक्तियों की वृद्धि कर सकेगा, यह शक्तियाँ दृढ़ प्रतिज्ञा, आध्यात्मिक अनुभव, उद्देश्य की एकता और चित्त की शान्ति हैं । इन शक्तियों के उपयोग से वह विचार-संसार में तथा बाह्य संसार में झूँठ और सच की परख करना सीख जायगा । जब वह इन शक्तियों को प्राप्त कर लेगा और अपने साथ धार्मिक युद्ध करते समय उनको प्रयोग में लाना सीख जायगा तब वह संदेह की मरुभूमि के पार हो जायगा । उसके मार्ग से भ्रम के मेघ छिन्न भिन्न हो जायँगे और उसको दूसरा द्वार दिखाई देने लगेगा ।

जब वह इस द्वार के पास पहुँचेगा तब उसको अपना समस्त मार्ग दिखाई देने लगेगा और थोड़ी देर के लिए उसे ऊँचे पर उस स्थान के दर्शन होंगे जहाँ उसे पहुँचना है अर्थात् वह पवित्र जीवन के विशाल मंदिर के दर्शन करेगा और उसको पहले से ही उस बल, हर्ष और शान्ति का अनुभव होने लगेगा

जिनकी प्राप्ति विजय पाने पर होती है, क्योंकि उसे अंत में विजय प्राप्त करने का दृढ़ विश्वास हो जायगा।

वह अब आत्मविजय के काम में हाथ डालेगा। यह .म उन कामों से सर्वथा भिन्न है जिनको वह अब तक कर चुका है। अब तक उसने अपनी पाशविक वासनाओं को वश में किया था, उनको परवर्तित किया था और सरल बनाया था; परन्तु अब वह अपनी बुद्धि को परिवर्तित करना और सरल बनाना आरंभ करेगा। वह अब तक अपने भावों को अपने आदर्श के अनुकूल बनाता रहा, परन्तु अब वह अपने विचारों को उस आदर्श के अनुकूल बनाना आरंभ करेगा। उसका आदर्श भी अब पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और सुंदर हो जायगा। इस समय वह पहले पहल मालूम करेगा कि एक स्थायी और अक्षय सिद्धान्त कैसा होता है। वह मालूम करेगा कि पवित्रता जिसकी उसे खोज है, परिवर्त्तन शील नहीं है। पवित्रता अनादि काल से एक सी चली आई है। उसको किसी विशेष मनुष्य के अनुकूल नहीं बना सकते, किन्तु मनुष्य को उसके अनुकूल बनना पड़ेगा और उसके अनुसार चलना पड़ेगा। वह चारित्र संबंधी एक निर्दिष्ट नियम है। पवित्रता का अर्थ बुरी वासनाओं को, स्वमत को और स्वार्थ को त्याग देना और मनुष्यों तथा अन्य जीवधारियों के प्रति सदा निःस्वार्थ प्रेम का वर्ताव करना है। उसमें किसी प्रकार का हेर फेर नहीं हो सकता। पवित्र जीवन निष्कलंक और सर्व गुण संपन्न चरित्र को कहते हैं। इसलिए, वह स्वार्थमय सांसारिक जीवन के सर्वथा प्रतिकूल है।

जब उसकी समझ में ये सब बातें आ जायँगी तब वह देखेगा कि यद्यपि वह कषायों और वासनाओं के दासत्व से मुक्त हो गया, तथापि वह स्वमत के बंधन में जकड़ा हुआ है; यद्यपि उसने ऐसी पवित्रता को प्राप्त कर लिया है, जिस को प्राप्त करने की आकांक्षा बहुत कम मनुष्यों को होती है और जिसका यथार्थ ज्ञान जन साधारण को नहीं हो सकता, तथापि उस में अब भी एक ऐसी अपवित्रता है जिसका दूर करना कठिन है। वह यह है कि वह अपने मत को (अपनी राय को) पसंद करता है और उसी को सत्य अथवा मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानता है। उसने संग्राम से अभी बिलकुल छुटकारा नहीं पाया और उच्च विचारों के संसार में जो प्रतिद्वंद्विता के नियम जारी हैं उनसे वह अब भी जकड़ा हुआ है। वह अब भी यही समझता है कि मेरी राय ठीक है और दूसरों का खयाल ग़लत है। घमंड के कारण वह उन मनुष्यों को देख कर हँसता है जिनका मत उसके मत के विरुद्ध है। परन्तु अब वह समझता जाता है कि यह भी एक प्रकार की स्वार्थपरता है और इससे भी अनेक दुःखों की उत्पत्ति होती है। इसके सिवाय उसमें अध्यात्मिक बातों की परख करने का बड़ा भारी सद्गुण आगया है। अब वह विनय पूर्वक अपना सिर झुका कर दूसरे द्वार में होकर निकलता है और अंतिम शान्ति की ओर बढ़ता है।

अपनी आत्मा को विनय के वस्त्र में ढक कर वह अपनी सब शक्तियों को उन मतों के समूल नष्ट करने में लगाता है जिनको वह अब तक पसंद करता था। अब वह भेद समझने लगता है कि सत्य एक ही है। सदा एक सी रहती

है और उसमें कुछ हेर फेर नहीं हो सकता, परन्तु सत्य के विषय में उसके तथा दूसरों के जो मत हैं वे अनेक हैं और बदलते रहते हैं। उसको यह ज्ञान हो जाता है कि भलाई, पवित्रता, दयालुता और प्रेम के विषय में जो मेरे मत हैं वे स्वयं इन गुणों से बहुत भिन्न हैं और मुझे पवित्रता के सिद्धान्तों पर चलना चाहिए, न कि अपने मतों पर। अब तक वह अपने मतों की बहुत क़दर करता था और दूसरों के मतों को निकम्मा समझता था, परन्तु वह अब अपने मतों की क़दर करना और उनका पक्ष ग्रहण करना छोड़ देता है, और उनको सर्वथा निकम्मा समझता है। उसके मस्तिष्क में इस हेर फेर के हो जाने का यह फल होता है कि वह सर्वथा पवित्र बन जाता है और बुरी वासनाओं को तथा आत्म प्रेम को अपने पास फटकने नहीं देता, और पवित्रता, बुद्धि, दयालुता और प्रेम के सिद्धान्तों के आधार पर अपने विचारों तथा आचार-व्यवहार की भित्ति खड़ी करता है। अब उसकी आत्मा बड़ी शीघ्रता से परमात्म पद की ओर बढ़ रही है। उसको केवल यही ज्ञान नहीं हुआ कि वासनायें मनुष्य को अंधकार में रखती हैं, किन्तु वह यह भी समझ गया है कि दर्शन शास्त्र का कोरा पठन-पाठन वृथा है और पवित्रता के नियमों को व्यवहार में लाने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

वह अब अपने मतों और विचारों को एक एक करके दूर करता चला जाता है और संसार के समस्त जीवधारियों के प्रति भरपूर प्रेम करना सीखता जाता है। ज्यों ज्यों वह अपने मतों का त्याग करता है, त्यों त्यों उसका बोझ हलका होता

जाता है और वह अब मुक्त होने का अर्थ समझता जाता है। प्रसन्नता, हर्ष और शान्ति के पवित्र फूल उसके हृदय में अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं। हृदय में प्रसन्नता तथा शान्ति के आने से उसका वाह्य जीवन भी वैसा ही बन जाता है। अब वह जो काम करता है उस में प्रतिद्वंदिता का लेश भी नहीं होता। इसलिए वह कष्ट, चिन्ता और भय के बिना ही अपनी आवश्यकताओं को पूरी कर लेता है। वह अब प्रतिद्वंदिता के नियमों की सीमा के सर्वथा वाहर हो गया है और उसने प्रेम के नियम को अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया है। वह अपने समस्त लौकिक कार्य स्पर्धा अथवा कठिनाई के विना शान्तिपूर्वक कर लेता है । वास्तव में बात यह है कि प्रति-द्वंदिता के नियम, जिनके अनुसार संसार का व्यापार चल रहा है, उससे कोसों पीछे रह गये हैं और अब उसके ऊपर उनका प्रभाव नहीं पड़ सकता। इतनी यात्रा करने से उसका ज्ञान क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है। उसको पवित्रता और ज्ञान की ऊँची सीढ़ियों से, जिन पर वह अब चढ़ गया है, मानवी कार्य नियमबद्ध दिखाई देते हैं। अब उसके मस्तिष्क को और भी बड़ी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं अर्थात् उसमें धैर्य आजाता है, उसका चित्त स्थिर रहता है, वह प्रतिरोध नहीं करता और भविष्यदर्शी हो जाता है । उसके भविष्यदर्शी हो जाने से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि वह भविष्यद्वाणी कर सकता है, किन्तु उसको उन गुप्त कारणों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है जिन पर मनुष्यों के जीवन का तथा अन्य प्राणियों के जीवन का आधार है और जिनसे अनेक प्रकार के सर्वव्यापी परिणामों और घटनाओं की उत्पत्ति होती है।

यहाँ पहुँच कर वह मनुष्य विचार-संसार में फैले हुए प्रतिद्वंद्विता के नियमों से भी अपने संबंध को तोड़ देता है और इसलिए वह क्रूरता, बदनामी, शोक, लज्जा, आपत्ति और चिंता से, जो उन नियमों के परिणाम हैं, बच जाता है। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता है त्यों त्यों वे अक्षय सिद्धान्त, जिनको हम विश्व का आधार और ढाँचा कह सकते हैं, उसे कुछ दूर पर धुँधले से दिखाई देते हैं, परन्तु धीरे धीरे उनका रूप स्पष्ट होता जाता है । अब उसे दुख का अनुभव नहीं होता, उसके पास पाप नहीं फटक सकता और उसके हृदय में अनंत शान्ति का उदय होने लगता है।

परन्तु वह अभी मुक्त नहीं हुआ है । उसने अभी अपनी यात्रा समाप्त नहीं की है। वह यहाँ पर चाहे जितनी देर तक विश्राम कर सकता है । परन्तु कभी न कभी वह अपनी अंतिम चेष्टा करेगा और अपने अंतिम उद्देश को (आत्म-त्याग की अवस्था को अर्थात् परमात्म पद को) प्राप्त कर लेगा। वह अभी स्वार्थ से सर्वथा मुक्त नहीं हुआ, क्योंकि वह अपनी जान और माल से अब भी प्रेम करता है । और जब वह निदान यह समझ जाता है कि इतना स्वार्थ भी त्याग देना चाहिए तब उसको तीसरा द्वार भी दिखाई देने लगता है। यह द्वार आत्म-त्याग का द्वार है । यह द्वार अंधकारमय नहीं है किन्तु ऐसे दिव्य प्रकाश से ज्वाजल्यमान है कि कोई ऐहिक पदार्थ उसकी बराबरी नहीं कर सकता और वह निश्चय पूर्वक उसकी ओर बढ़ता है। संदेह के बादल तो पहले ही छिन्न भिन्न हो चुके ; प्रलोभन की गुर्राहट नीचे घाटी में ही रह गई ; और

मुक्तिधाम में प्रवेश।

इसलिए अब वह क़दम उठाये हुए, साहस के साथ और अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते हुए मोक्षधाम के द्वार के पास पहुँचता है। उसका ममत्व अब केवल उन पदार्थों में रह गया है जो न्याय की दृष्टि से उसकी है, परन्तु अब उसको अनुभव होता है कि मुझे किसी पदार्थ से ममत्व न रखना चाहिए। ज्योंही वह द्वार पर आ के विश्राम लेता है, त्योंहीं उसे यह आदेश सुनाई देता है, जिसे वह टाल नहीं सकता—"तुझ में अभी एक बात की कमी है; जो कुछ तेरे पास है उसे दान करदे और फिर तुझे मुक्तिधाम में सब कुछ मिलेगा।" जब वह इस अंतिम द्वार में होकर निकल जाता है तब वह ज्योतिर्मय और स्वतंत्र हो जाता है, वासना, रुचि और ममत्व के अत्याचार से मुक्त हो जाता है, और दयावान संतोषी, नम्र और पवित्र हो जाता है। अब उसने अपने अभीष्ट को अर्थात् परमात्मपद और ईश्वरीय पवित्रता को प्राप्त कर लिया।

परमात्म पद की यात्रा लम्बी और कड़ी हो सकती है और छोटी और सुगम भी हो सकती है। उसमें एक मिनट भी लग सकता है और सहस्रों युग भी। यह बात परमात्मपद की खोज करने वाले की भक्ति और श्रद्धा पर निर्भर है। अश्रद्धा के कारण अधिकांश मनुष्य इस मार्ग का अवलम्बन नहीं कर सकते, क्योंकि यदि मनुष्यों को पवित्रता पर श्रद्धा नहीं है और वे उसको अप्राप्य समझते हैं, तो वे उसको किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? इस मार्ग पर चलने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य बाह्य संसार को अथवा उससे संबंध रखने

वाले अपने कर्त्तव्यों को त्याग दे । वास्तव में बात यह है कि स्वकर्तव्य का पालन करके ही मनुष्य पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। कुछ मनुष्य ऐसे हैं, जिनकी श्रद्धा बहुत बढ़ी हुई है । ऐसे मनुष्यों को पवित्रता के मार्ग का ज्योंही पता लगता है त्योंही उनकी स्वार्थवासनाएँ उनसे एक एक करके विदा हो जाती हैं और वे परमपद को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे मनुष्यों की संख्या थोड़ी है। परन्तु सभी मनुष्य जिनको पवित्रता पर श्रद्धा है और जो उसे प्राप्त करना चाहते हैं कभी न कभी अवश्य विजयी हो सकते हैं,- यदि वे सांसारिक कर्त्तव्य पालन करते हुए उद्विग्न न हो जायँ और अपने लक्ष्य की ओर टकटकी बाँधे हुए अपने मार्ग पर बढ़ते चले जायँ ।

मुक्तिधाम में विश्राम और सकल पदार्थों की प्राप्ति।

प्रतिद्वंदिता के संसार से प्रेम-लोक की यात्रा जिस प्रकार की जाती है उसका सारांश यह है—अपने आप को वश में रक्खो और पवित्र बनो। यदि इस मार्ग का निरंतर अवलम्बन किया जाय, तो मोक्ष की प्राप्ति अवश्य होगी। ज्यों ज्यों मनुष्य को अपनी आंतरिक शक्तियों पर अधिकार होता जाता है, त्यों त्यों उसे उन नियमों का ज्ञान होता जाता है जिनके अनुसार वे शक्तियाँ काम करती हैं और जब मनुष्य अंतरात्मा में कार्य-कारण की अविराम गति को समझ जाता है तब वह यह भी समझ जाता है कि समस्त मनुष्य जाति में कार्य कारण की क्रिया किस प्रकार होती है, चूँकि वे नियम जिनके अनुसार मनुष्य कार्य करते हैं मानवी हृदय की आवश्यकताओं से उत्पन्न होते हैं और उसने इन आवश्यकताओं को सुधार लिया है और बदल दिया है, इसलिए उसका जीवन

दूसरे नियमों के शासन में चला जाता है जो उसकी परवर्तित अवस्था के अनुकूल होते हैं और चूँकि उसने अपनी स्वार्थ-वासनाओं को अपने वश में कर लिया है और उनको जीत लिया है इसलिए वह इन वासनाओं से सम्बन्ध रखने वाले नियमों से छुटकारा पा जाता है।

इस यात्रा में अपने मस्तिष्क को भी शुद्ध बनाना पड़ता है अपने चरित्र रूपी सुवर्ण में से सब मैल-मिट्टी को दूर करना पड़ता है। जब मस्तिष्क इस प्रकार शुद्ध हो जाता है तब विश्व की वे बातें जो ऊपरी दृष्टि से बड़ी भारी उलझनें मालूम होती हैं, सरल होती जाती हैं और यहाँ तक सरल हो जाती हैं कि समस्त विश्व थोड़े से अपरिवर्त्तन शील सिद्धान्तों पर निर्धारित मालूम होता है; और फिर आगे चल कर ये सब सिद्धान्त एक सिद्धान्त में अर्थात् प्रेम के सिद्धान्त में गर्भित मालूम होते हैं।

जब मस्तिष्क इस प्रकार शुद्ध हो जाता है और उसकी सब उलझनें दूर हो जाती हैं तब मनुष्य शान्ति को प्राप्त कर लेता है और उसका जीवन सार्थक हो जाता है। जब वह अपने उस स्वार्थ मय जीवन पर विचार करता है, जिसको वह सदा के लिए तिलाञ्जलि दे चुका है, तो वह जीवन उसको एक भयानक स्वप्न के समान मालूम होता है जिसे देख कर वह अब जग पड़ा है; परन्तु जब वह अपनी ज्ञान-दृष्टि को फैला कर देखता है तब उसे मालूम होता है कि अन्य मनुष्यों का जीवन अभी वैसा ही है। वह देखता है कि पुरुष और स्त्रियाँ उन पदार्थों के

लिए झगड़ते और मरे मिटते हैं. जो प्रकृति में बाहुल्यता के साथ मौजूद हैं और जो उन सब के लिए यथेष्ट हो सकती हैं, यदि वे लालच छोड़ कर और बिना लड़े झगड़े उसको ग्रहण करें, उसका हृदय दयार्द्र हो जाता है (और उसको हर्ष भी होता है क्योंकि वह जानता है कि कभी न कभी मनुष्य जाति अपनी लम्बी और दुःखमय नींद से जागृत होगी)। अपनी यात्रा के शुरू में उसे यह मालूम होता था कि मैं मनुष्य जाति को छोड़ कर बहुत दूर निकल आया हूँ। और वह इस बात पर एकान्त में बड़ा दुखी हुआ था। परन्तु अब अपने चरमोद्देश्य पर पहुँच कर उसको मालूम होता है कि मेरा सम्बन्ध मनुष्य जाति के साथ इतना घनिष्ट होगया है जितना पहले कभी नहीं हुआ था। इतना ही नहीं किन्तु वह अपने आप को मनुष्य जाति के ठेठ बीच में पाता है और उसके दुखों को देख कर दुखी होता है और सुखों को देख कर सुखी होता है। चूँकि, उसे किसी प्रकार का स्वार्थ-साधन नहीं करना, इसलिए वह मनुष्य जाति में ही सर्वथा तन्मय रहता है। अब उसका जीवन अपने हित के लिए नहीं, किन्तु पर हित के लिए है ; और ऐसे जीवन के कारण उसे सर्वोच्च आनन्द और अमित शान्ति की प्राप्ति होती है। पहले वह दया, प्रेम, आनन्द और सत्य की खोज में था ; परन्तु अब वह वास्तव में स्वयं दया, प्रेम, आनंद और सत्य का स्वरूप बन गया है ; और उसके विषय में अब यह कहा जा सकता है कि उसमें अब निजत्व बिलकुल नहीं रहा है, क्योंकि उसने निजत्व से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातों का अंत कर दिया है और अब उसमें केवल वे ही गुण और सिद्धान्त रह गये हैं जिनमें निजत्व का सर्वथा अभाव है।

और ये गुण अब उसके जीवन में प्रकट होते हैं और उसके सब आचार-व्यवहार उन्हीं के अनुसार होते हैं।

चूँकि उसने आत्मरक्षा का खयाल बिलकुल छोड़ दिया है और वह निरंतर दया, बुद्धिमत्ता और प्रेम में तन्मय रहता है, इसलिए वह सब से ऊँचे नियम (प्रेम के नियम) की सीमा में आ जाता है, और वह उस नियम को समझता है और उसी के अनुकूल निरंतर चलता है; बल्कि यों कहना चाहिए कि उसमें और प्रेम के नियम में कुछ भेद नहीं रहा; दोनों एक हो गये हैं। अपने आप को भूल कर वह विश्व में लीन हो गया है। और चूँकि दया, बुद्धिमत्ता और प्रेम उसके स्वभाव के अंग बन गये हैं, इस लिए उसको अपने रक्षण की आवश्यकता नहीं हो सकती, क्योंकि ये सिद्धान्त स्वयं उसके रक्षक बन जायँगे। ये सिद्धान्त वास्तविक, ईश्वरीय और अविनाशी हैं, जिस मनुष्य का स्वभाव ही आनन्द, सुख और शान्ति से बना हुआ है उसे भोग-विलास के खोजने की आवश्यकता नहीं। वह दूसरों से प्रतिद्वंदिता भी नहीं करेगा, क्योंकि जब वह प्रेम के कारण दूसरों को भी अपना समझता है, तब वह किस से प्रतिद्वंदिता कर सकता है? जिसने दूसरों के लिए अपने आप को समर्पित कर दिया है वह किसके साथ संग्राम कर सकता है? जो सम्पूर्ण आनन्द के उद्गम पर पहुँच गया है और जिसे सब आवश्यक पदार्थ मिल जाते हैं उसे किस की प्रतिद्वंदिता का भय हो सकता है? उसने स्वार्थ को त्याग कर प्रेम को प्राप्त कर लिया है जो ईश्वरीय गुण है; और उसका जीवन अब प्रेम और प्रेम के कार्यों से भरपूर है। वह अब बड़े आनन्द

के साथ कह सकता है कि "मैं दयानिधि के पास पहुँच गया हूँ। मैंने प्रेम के सर्वोत्तम सिद्धान्त का वस्त्र धारण कर लिया है। मेरे परिभ्रमण का अंत हो गया, क्योंकि मुझे विश्राम मिल गया। मेरा दुख तथा शोक नष्ट हो गये, क्योंकि मैंने शान्ति को प्राप्त कर लिया है। मेरी सब उद्विग्नता जाती रही, क्योंकि मुझे एकता का सिद्धान्त हाथ लग गया है। मैंने अपने दोषों को दूर कर दिया, क्योंकि मुझे सत्य का पता लग गया।

जब ऐक्य-भाव का सिद्धान्त, पवित्रता अथवा ईश्वरीय प्रेम प्राप्त हो जाता है तब सब पदार्थ जो हम को स्वार्थपरता और स्वमत के कारण भिन्न रूप में दिखाई देते थे, अपने यथार्थ रूप में दिखाई देने लगते हैं। विश्व एक है और उसमें जो भिन्न भिन्न बातें देख पड़ती हैं वे सब एक नियम के अंतरगत हैं। इस पुस्तक में अब तक नियमों को उच्च और निम्न श्रेणियों का बताया गया है और उनमें इस प्रकार भेद करना आवश्यकीय भी था, परन्तु मोक्ष की प्राप्ति होने पर मालूम हो जाता है कि मनुष्यों के भिन्न भिन्न कार्य प्रेम के एक महान् नियम के भीतर आ जाते हैं। इसी नियम के कारण मनुष्यों को दुःख भोगना पड़ता है और जब मनुष्यों का दुःख बहुत बढ़ जायगा तब वे पवित्र और बुद्धिमान् हो जायँगे और स्वार्थपरता को, जो दुःख का मूल कारण है, त्याग देंगे।

चूँकि विश्व का नियम तथा आधार प्रेम है, इसलिए स्वार्थपरता से संबन्ध रखनेवाले जितने कार्य हैं वे सब इस नियम के विरुद्ध हैं। स्वार्थपरता से इस नियम की अवहेलना होती है और इसका फल यह होता है कि स्वार्थपरता के प्रत्येक कार्य

और विचार से ठीक इतना दुःख मिलता है जो स्वार्थपरता के परिणामों का अंत करके सर्व व्यापक समता को पुनः स्थापित करदे। इसलिए दुःख एक प्रकार की रुकावट है जो इस नियम के द्वारा अज्ञान और स्वार्थपरता की वृद्धि को रोकने के लिए प्रकट होती है, और फिर ऐसी दुःखमय रुकावट से मनुष्य बुद्धि प्राप्त करता है। दुःखों को झेलते झेलते वह बुद्धिमान हो जाता है और दुःख के कारण को दूर करने का प्रयत्न करता है।

चूँकि स्वर्गधाम में न तो संग्राम है और न स्वार्थपरता, इस लिए वहाँ न तो दुःख है और न रुकावट, वहाँ पर सम्पूर्ण समता और शान्ति है, जो मनुष्य वहाँ पहुँच गये हैं वे अपनी पाशविक वासनाओं के अनुसार नहीं चलते (क्योंकि उनके मन में ऐसी वासनाएँ उत्पन्न हो नहीं हो सकतीं), किन्तु वे बड़ी बुद्धिमानी के साथ रहते हैं। उनका स्वभाव प्रेममय हो गया है और वे प्राणीमात्र को प्रेम की दृष्टि से देखते हैं, उनको कभी आजीविका की चिन्ता नहीं करनी पड़ती, क्योंकि वे स्वयं जीवित हैं, और यदि उनको किसी बाह्य पदार्थ की अथवा और किसी प्रकार की आवश्यकता होती है, तो वह चिन्ता या प्रयत्न किये बिना ही पूरी हो जाती है। यदि वे किसी काम में हाथ डालते हैं, तो उन्हें उस काम के करने के लिए यथेष्ट धन और मित्र तुरंत ही मिल जाते हैं। चूँकि वे अब अपने सिद्धान्तों को, चरित्र के नियमों को नहीं तोड़ते हैं, इसलिए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति ईमानदारी के साथ हो जाती है। उनको जितने धन अथवा जितनी सहायता की आवश्यकता होती है वह सब उनको उन सज्जनों से प्राप्त होती है जो या तो स्वयं

मोक्षधाम को प्राप्त कर चुके हैं (जीवन मुक्त हो गये हैं) अथवा उसकी प्राप्ति में लगे हुए हैं। जो प्रेम के साम्राज्य में रहते हैं उनकी आवश्यकताएँ चिन्ता के विना प्रेम के नियम के द्वारा ठीक उसी तरह पूरी होती हैं जिस प्रकार स्वार्थपरता के साम्राज्य में रहने वाले मनुष्यों की आवश्यकताएँ घोर प्रतिद्वंद्विता और दुःख के द्वारा पूरी होती हैं। चूँकि उन्होंने अपने हृदय में मूल कारण को बदल दिया है, इसलिए उनके वाह्य और आंतरिक जीवन में उस कारण के परिणाम भी बदल जाते हैं। जिस प्रकार सारे संग्राम और समस्त दुःख का मूल कारण ममत्व है इसी प्रकार सारी शान्ति और समस्त आनन्द का मूल कारण प्रेम है।

जो मनुष्य मुक्तिधाम में विश्राम कर रहे हैं वे किसी वाह्य पदार्थ में सुख को नहीं खोजते। वे जानते हैं कि वाह्य पदार्थ केवल अनित्य परिणाम हैं जो आवश्यकता पड़ने पर दृष्टिगोचर होते हैं और अपना काम करके नाश को प्राप्त हो जाते हैं। वे इन पदार्थों को (धन, वस्त्र, भोजन इत्यादि को) आदर्श जीवन की तुच्छ वातें और परिणाम समझते हैं, इसलिए वे सव प्रकार की चिन्ता और कष्ट से छुटकारा पा जाते हैं और प्रेम में तन्मय हो जाने से वे सुख के स्वरूप वन जाते हैं। पवित्रता, दया, वुद्धिमत्ता और प्रेम के अविनाशी सिद्धान्तों के अनुसार चलने से वे अमर हो जाते हैं, और उन्हें मालूम हो जाता है कि हम अमर हैं। वे परमात्मा में मिल जाते हैं और वे जानते हैं कि हम परमात्मा में मिल गये हैं। चूँकि उनको पदार्थों का यथार्थ ज्ञान है, इसलिए वे किसी पदार्थ को बुरा नहीं समझते। संसार में जो कार्य हो रहे हैं, वे सव उनको पवित्र नियम के

अंतरगत मालूम होते हैं। सब मनुष्यों का स्वभाव परमात्मपद को प्राप्त करने का है, परन्तु मनुष्यों को अपने इस स्वभाव का ज्ञान नहीं है; और मनुष्यों के सभी कार्य किसी ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति के लिए चेष्टाएँ हैं, यद्यपि उनमें से बहुत से कार्य बुरे होते हैं और उद्देश्य तक पहुँचने की शक्ति नहीं रखते। जिन कर्मों को हम पाप कहते हैं (यहाँ तक कि वे बुरे कर्म भी जो जान-बूझ कर किये जाते हैं) उन सब का मूल कारण अज्ञानता है। इन बातों को जान कर वह किसी बात को भी बुरा नहीं समझता और वह प्रेम और दया की मूर्ति बन जाता है।

परन्तु यह न समझना चाहिए कि जो मनुष्य जीवनमुक्त हो जाते हैं उनके दिन विलास और आलस्य में गुज़रते हैं। मुक्तिधाम के खोज करनेवालों को सब से पहले इन्हीं दो पापों से निवृत्ति प्राप्त करनी पड़ती है। जीवन्मुक्त आत्माएँ शान्ति-पूर्वक काम किया करती हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि ऐसे मनुष्य ही जीवन का सच्चा आनंद भोगते हैं, क्योंकि स्वार्थमय जीवन, जिसमें अनेक चिन्ताएँ, शोक और भय लगे रहते हैं, वास्तविक जीवन नहीं हैं। वे अपने सब कर्तव्यों को निःस्वार्थ होकर और सच्चे हृदय से बड़े परिश्रम के साथ करते हैं, और अपने समस्त साधनों और शक्तियों को, जो समुन्नत हो गई हैं, दूसरों के हृदयों में पवित्रता के मंदिर स्थापित करने में लगाते हैं। वे संसार में यह काम करते हैं—दूसरों के लिए पहले स्वयं उदाहरण बन जाते हैं और फिर उनको उपदेश देते हैं। अपने स्वार्थ को त्याग कर वे दूसरों को बुद्धिमत्ता, प्रेम और शान्ति का दान करते हैं। उनको अब शोक का सामना नहीं करना पड़ता, किन्तु वे अनंत आनन्द का रसास्वादन करते हैं।

मुक्तिधाम में प्रवेश।

जीवनमुक्त आत्माओं को हम उनके जीवन से पहिचान सकते हैं। उनकी परिस्थितियाँ चाहे कैसी ही हों और बाह्य संसार में चाहे कितना ही उलट फेर हो जाय, परन्तु वे सदैव प्रेम, आनन्द, शान्ति, सहन शीलता, दयालुता, सज्जनता, सत्य-निष्ठा, नम्रता, संयम और आत्मदमन में तन्मय रहती हैं। ऐसे मनुष्य क्रोध, भय, आशंका, द्वेष, सनक, चिन्ता और शोक से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। चूँकि वे पवित्र हो जाते हैं, इसलिए उन में वे गुण आजाते हैं जो संसार के अन्य मनुष्यों के गुणों के सर्वथा प्रतिकूल हैं और जिनका अवलम्बन करना संसार के मनुष्य मूर्खता समझते हैं। वे स्वत्त्व नहीं माँगते, वे अपनी रक्षा नहीं करते, वे बदला नहीं लेते और उन मनुष्यों के साथ भलाई करते हैं जो उनको हानि पहुँचाने की चेष्टा करते हैं। वे उन लोगों के साथ, जो उनका विरोध करते हैं और उन पर आक्रमण करते हैं वैसा ही नम्र व्यवहार करते हैं जैसा उन लोगों के साथ जो उनसे सहमत हैं। वे दूसरों के विषय में अपना मन्तव्य स्थिर नहीं करते, वे किसी मनुष्य अथवा किसी पद्धति को बुरा नहीं बताते और सब के साथ मैत्रीभाव रखते हैं।

मुक्तिधाम में पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण शान्ति का साम्राज्य है, वहाँ पर समता, सुख और स्थिरता विराजती है। वहाँ पर चिड़चिड़ाहट, क्रोध, कटु भाषण, आशंका, भोग-विलास की इच्छा तथा अशान्ति फैलाने वाली बातों की गुज़र नहीं है, वहाँ पर मनुष्य पूर्ण आनन्द भोगते हैं, दूसरों को क्षमा करते हैं और दूसरे उनको क्षमा करते हैं। मन, वचन और काय से वे दूसरों का हित चाहते हैं। और वह मुक्तिधाम

प्रत्येक पुरुष और स्त्री के हृदय में मौजूद है, सभी मनुष्य उसके अधिकारी हैं। वह उनकी निजी संपत्ति है। यदि वे चाहें तो वे उसमें अभी प्रवेश कर सकते हैं, परन्तु उस जगह पाप की गुज़र नहीं है। उसके द्वारों में होकर कोई स्वार्थमय विचार अथवा कार्य प्रवेश नहीं कर सकता। कोई बुरी वासना उसको अपवित्र नहीं कर सकती। जो चाहें वही उसमें प्रवेश कर सकते हैं, परन्तु सब को टिकट का मूल्य देना पड़ेगा। यह मूल्य है सम्पूर्ण आत्म-समर्पण। यदि तुम संपूर्ण सुख चाहते हो, तो सर्वस्व को त्याग दो। परन्तु मनुष्यों को अपनी चीज़ों से इतना मोह है कि वे उन्हें त्यागना नहीं चाहते। वे अपने आप को इन चीज़ों से भरापूरा समझते हैं। वे धन से भरेपूरे हैं, परन्तु वे धन को अपने पास सदा के लिए नहीं रख सकते। वे भय से भरेपूरे हैं, परन्तु वे इस भय को कभी त्याग नहीं सकते। वे आत्म-प्रेम से भरेपूरे हैं और उसमें सदा लीन रहते हैं। वे वियोग के दुःखों से भरेपूरे हैं जिनसे वे छुटकारा पाना चाहते हैं। वे आमोद प्रमोद की वांछाओं से भरेपूरे हैं, वे कष्ट और शोक से भरेपूरे हैं। वे प्रतिद्वंदिता और दुखों से भरेपूरे हैं। वे आवेश और आपत्ति से भरेपूरे हैं। सारांश यह है कि वे उन सब चीज़ों से भरेपूरे हैं जिनसे भरेपूरे न होना चाहिए। उनके पास उन्हीं चीज़ों की कमी है जिनसे मनुष्य को भरापूरा होना चाहिए और जो मुक्तिधाम के बाहर नहीं मिल सकतीं। वे उन सब बातों से भरेपूरे हैं जो अज्ञान और मृत्यु से संबंध रखती हैं, परन्तु उनके पास उन बातों की कमी है जो ज्ञान और जीवन से संबंध रखती हैं।

अतएव जो मनुष्य मुक्तिधाम की इच्छा रखता है वह

टिकट का मूल्य देकर उसमें प्रवेश कर सकता है। यदि उसके हृदय में दृढ़ और सच्ची श्रद्धा है, तो वह मुक्तिधाम में अभी प्रवेश कर सकता है और स्वार्थरूपी वस्त्र को उतार कर सब झंझटों से मुक्त हो सकता है। यदि उसके हृदय में श्रद्धा की कमी है, तो वह स्वार्थपरता पर धीरे धीरे विजय प्राप्त कर सकता है और प्रतिदिन निरंतर उद्योग करके और धैर्यपूर्वक परिश्रम करके मुक्तिधाम को प्राप्त कर सकता है।

पवित्रता के मंदिर में चार सिद्धान्तों की चार दीवारें हैं। ये सिद्धान्त शुद्धता, बुद्धिमत्ता, दया और प्रेम हैं। उस मंदिर की छत शान्ति है, उसका फ़र्श दृढ़ता है, उसका द्वार निःस्वार्थ कर्तव्य-पालन है, उसका वायुमंडल ईश्वरीय ज्ञान है और उसका गान सुख है। वह मंदिर ऐसा दृढ़ है कि टस से मस नहीं हो सकता और चूँकि वह नित्य और अविनाशी है इस लिए वहाँ पर रह कर इस चिन्ता की आवश्यकता नहीं है कि हम कल क्या खायँगे और पियेंगे। और जब हृदय में इस मंदिर की (मुक्तिधाम की) स्थापना हो जाती है तब जीवन के लिए भोजन, वस्त्र इत्यादि पदार्थ एकत्र करने की चिन्ता नहीं रहती, क्योंकि चरमोद्देश्य पर पहुँच कर ये सब पदार्थ उसी प्रकार मिल जाते हैं जिस प्रकार कारण से कार्यों की सिद्धि हो जाती है। फिर जीवन के लिए संग्राम करने की आवश्यकता नहीं रहती और सब प्रकार की अध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति प्रति दिन प्रकृति के विपुल भण्डार से हो जाती है।

द्वितीय भाग

दिव्यजीवन

दिव्यजीवन ।
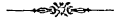
ईश्वरीय केन्द्र ।

यथार्थ जीवन को (उस जीवन को जो बल, आनन्द और अनन्त शान्ति से परिपूर्ण है) प्राप्त करने का गुप्त रहस्य यह है कि ईश्वरीय केन्द्र को खोज अपने भीतर देखो और उसको अपने आचरण का उद्गम बना लो : जिन पाशविक वासनाओं और मानसिक तर्क वितर्कों में मनुष्य साधारतया फँसे रहते हैं उनसे अपना संबंध तोड़ दो । ये स्वार्थमय बातें यथार्थ जीवन को इस प्रकार छिपाये हुए हैं जैसे छिलका फल के गूदे को छिपाये रहता है । जो मनुष्य तत्त्वज्ञानी बनना चाहता है, यथार्थ जीवन को प्राप्त करना चाहता है, उसे इस छिलके को उतार

कर फेंक देना चाहिए अर्थात् स्वार्थमय बातों का परित्याग कर देना चाहिए।

यदि तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारे भीतर कोई ऐसा तत्त्व है जो अपरिवर्त्तन शील, अजर तथा अविनाशी है, तो तुम कुछ नहीं जानते और समय के दर्पण में निःसार प्रतिविम्बों को (परछाइयों को) ही देख कर संतुष्ट हो जाते हो। यदि तुम अपने भीतर उन सिद्धान्तों को नहीं पाते, जो मनोविकारों से निर्लिप्त हैं और जिन पर संसार के संग्राम तथा आडम्बर का प्रभाव नहीं पड़ता, तो तुम को उस माया के सिवा कुछ नहीं मिलता जो हाथ लगाते ही लोप हो जाती है।

जो मनुष्य यह प्रतिज्ञा कर लेगा कि मैं परछाइयों अथवा प्रतिविम्बों से संतुष्ट न हूँगा वह अपने प्रतिज्ञारूपी तीव्र प्रकाश की सहायता से चलती फिरती परछाइयों को भगा देगा और जीवन की यथार्थता को समझ जायगा। उसको यथार्थ जीवन का अर्थ मालूम हो जायगा और वह अपने जीवन को वैसा ही बना लेगा। अपने हृदय में ईश्वरीय केन्द्र को पाकर वह पवित्र शान्त बलवान् और बुद्धिमान् बन जायगा और जीवन्मुक्त हो जायगा।

ईश्वर के आश्रय में चले जाने से और वहीं पर रहने से मनुष्य की प्रवृत्ति पाप की ओर से हट जाती है। वह कोई पाप कर्म नहीं करता, जिससे उसको दुःख पहुँचे अथवा उसकी पवित्र शान्ति भंग हो जाय। शोक अथवा पश्चात्ताप की अग्नि

उसको दग्ध नहीं कर सकती । वह प्रतिदिन शुभ कर्म करता रहता है । उसको ईश्वर पर अटल श्रद्धा हो जाती है । उसको न तो अपनी श्रद्धा पर कभी संदेह होता है और न उसका आनंद भंग होता है । वह अपनी पिछली बातों पर पश्चात्ताप नहीं करता । वह वर्तमान काल को अपनाता है और उसी से अपना संबंध रखता है ।

चूँकि मनुष्य स्वभाव से ही विलास प्रिय होते हैं इसलिए वे अपनी वासनाओं से प्रेम करते हैं, परन्तु इस प्रेम के कारण वे अंत में दुःख और हानि उठाते हैं । चूँकि वे अहंकार में फँसे रहते हैं, इसलिए वे मानसिक तर्क वितर्क को पसंद करते हैं, परन्तु इसका फल यह होता है कि मनुष्य को नीचा देखना पड़ता है और उसे शोकाकुल होना पड़ता है । जब आत्मा की वासनाओं की तृप्ति हो जाती है और वह अहंकार के दुष्परिणाम भोग लेती है तब वह ईश्वर के आदेशों के अनुसार चलने की इच्छा करती है । अहंकार का नाश होने पर ही आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानती है ।

हमारे ऊपर प्रत्येक आपत्ति किसी अंतरस्थ दोष के कारण आती है । यदि मनुष्य की समझ में यह बात आ जाय तो वह पहले से अधिक बुद्धिमान् हो सकता है और वह आपत्तियों से बच कर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है, क्योंकि वह मोक्षधाम में पहुँच सकता है जहाँ आपत्ति वा दुःख का गुज़र नहीं है । तुम इस बात को कब समझोगे ? तुम को जीवन में जो अनेक प्रकार के क्लेश, शोक अथवा कष्ट उठाने पड़ते हैं वे

सब तुम को यह बतला रहे हैं कि तुम में दोष हैं। मोक्षधाम में पहुँचना तुम्हारे हाथ में है । तुम उससे कब तक विमुख रहोगे। और अहंकार तथा स्वार्थ रूपी नरक की अग्नि में कब तक पड़े रहोगे ?

जहाँ स्वार्थपरता नहीं है वहीं पर मोक्षधाम है और वहीं पर अनन्त सुख तथा अनंत शान्ति की सामग्री है। यदि तुम परमात्मा के सच्चे भक्त बनना चाहते हो। उसमें लवलीन होना चाहते हो । तो तुम को इसके लिए बलि देनी पड़ेगी। वह बलि अहँकार तथा स्वार्थपरता को भेंट चढ़ाना है, क्योंकि इन्हीं बातों से दुःख की उत्पत्ति होती है । जो मनुष्य इन बातों को त्याग देते हैं वे ही अनंत सुख तथा शान्ति को प्राप्त करते हैं।

जीवन का उद्देश्य यह नहीं है कि मनुष्य आलस्य वा परिश्रम में अथवा धन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने में अपनी आयु के दिन पूरा कर दे; किन्तु जीवन का उद्देश्य यह है कि हम शान्ति तथा ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करें और मोक्षधाम में पहुँचने के इच्छुक बनें।

यदि अपवित्र मनुष्य पवित्रता की ओर झुकें तो वे पवित्र हो जायँगे। यदि निर्बल मनुष्य बल की शरण लें तो वे बलवान हो जायँगे । यदि अज्ञानी मनुष्य ज्ञान का अवलंबन करें तो वे ज्ञानवान हो जायँगे। मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है और वह जिस बात की इच्छा करता है उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न

करता है। प्रत्येक मनुष्य को अपना सुधार आप करना पड़ेगा, परमेश्वर उसका सुधार नहीं करेगा। कल्पना कीजिए कि कोई मनुष्य एक सुंदर प्रासाद की इच्छा रखता है। और वह उसके लिए भूमि मोल लेकर परमेश्वर से यह प्रार्थना करता है कि—"हे ईश्वर! मेरे लिए इस भूमि पर एक उत्तम प्रासाद बना दो।" क्या तुम उस मनुष्य को मूर्ख न समझोगे? इसके विरुद्ध क्या तुम उस मनुष्य को बुद्धिमान न समझोगे जो भूमि मोल ले कर उस पर प्रासाद बनवाने के लिए राज मज़दूरों और बढ़इयों को काम पर लगा दे? ईंट पत्थर के मकान के विषय में जो बात ठीक है वही बात आत्मा के प्रासाद के विषय में भी ठीक उतरती है। जिस प्रकार ईंट पर ईंट चुनने से मकान बनता है इसी प्रकार पवित्र विचार पर पवित्र विचार, शुभ कर्म पर शुभ कर्म चुनने से पवित्र जीवन रूपी प्रासाद तैयार होता है। परिश्रम, सावधानी तथा उद्योग के द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। आध्यात्मिक उन्नति न तो उद्यम के बिना प्राप्त हो सकती है और न इसकी भीख ही मिल सकती है।

जब मनुष्य अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को पहिचान जाता है तब उसको एक ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जिसके द्वारा वह सब कुछ कर सकता है। उसको प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान हो जाता है और उसको अनन्त शान्ति की प्राप्ति हो जाती है। जो सुख को प्राप्त करना चाहता है उसको सुख स्वयं खोजना पड़ेगा। उसको प्रत्येक बुरी वासना को, प्रत्येक कुटेव और कुकर्म को छोड़ना पड़ेगा।

मनुष्य एक धर्म को छोड़ कर दूसरे को अंगीकार करते हैं

और दूसरे को छोड़ कर तीसरे को । इस प्रकार वे भिन्न भिन्न धर्मों की शरण लेते हैं, परन्तु उनको अशान्ति मिलती है । वे देश देशान्तरों में फिरते हैं, परन्तु उनको निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं आता । वे अपने रहने के लिए सुंदर प्रासाद बनाते हैं और मनोहर उद्यान लगाते हैं, परन्तु उनको सुख नहीं मिलता । जब तक मनुष्य अपने भीतर सत्य की खोज करके उस पर नहीं चलता तब तक उसे शान्ति तथा संतोष की प्राप्ति नहीं हो सकती । जब तक वह अपने हृदय में पाप रहित आचरण का मंदिर स्थापित नहीं करता तब तक उसे अनंत सुख का प्राप्ति नहीं होती और जब उसको अनन्त सुख की प्राप्ति हो जाती है तब वह अपने समस्त बाह्य कार्यों और पदार्थों में उस सुख का संचार कर देता है ।

यदि कोई मनुष्य शान्ति को प्राप्त करना चाहता है तो उसे शान्ति-भाव रखना चाहिए । यदि वह प्रेम को प्राप्त करना चाहता है तो उसे दूसरों पर प्रेम-भाव रखना चाहिए । यदि वह दुःख से बचना चाहता है तो उसे दूसरों को न सताना चाहिए । यदि मनुष्य अपनी आत्मा के भीतर पैठ कर खोज करे तो उसे वहाँ पर आत्मोन्नति की संपूर्ण सामग्री मिल सकती है ; यही नहीं किन्तु उसे वहाँ पर आत्मोन्नति का सर्वोत्तम आधार भी मिल सकता है ।

मनुष्य संसार को सुधारने का चाहे जितना प्रयत्न करे परन्तु वह संसार का सुधार तब तक नहीं कर सकता जब तक वह अपना सुधार न कर ले । इस सिद्धान्त को प्रत्येक मनुष्य

को अपने हृदय पर अंकित कर लेना चाहिए। पवित्रता, प्रेम अथवा स्वार्थत्याग का उपदेश देने से उस समय तक कुछ नहीं हो सकता जब तक मनुष्य इन बातों को स्वयं ग्रहण न करले।

जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर को खोज लेता है वह ईश्वर के विषय में तर्क वितर्क करना छोड़ देता है, उसका जीवन ईश्वरीय हो जाता है और वह नित्य प्रति सदा शुभ कर्म करता रहता है।

वर्तमान काल की महत्ता ।

र्तमान काल में ही यथार्थता है । जो मनुष्य वर्तमान काल में काम करना जानता है वह न तो भूत काल की परवाह करता है और न भविष्यत् काल के आसरे रहता है । वह सदा काम करता रहता है । ज्यों ही कोई क्षण, कोई दिन अथवा कोई वर्ष व्यतीत हो जाता है त्यों ही वह हमारे लिए स्वप्न सा हो जाता है और या तो वह हमारे मस्तिष्क से सर्वथा ही लुप्त हो जाता है या उसकी छायामात्र हमारे मस्तिष्क में रह जाती है ; फिर उसमें यथार्थता नहीं रहती ।

भूत और भविष्यत् काल स्वप्न के समान अयथार्थ हैं । यथार्थता केवल वर्तमान काल में है । सब पदार्थों तथा शक्तियों की प्राप्ति वर्तमान काल में हो सकती है । जो मनुष्य वर्तमान काल में अर्थात् अब काम नहीं करता वह अपनी बड़ी भारी हानि करता है । यह सोचना कि यदि हम चाहते तो हम भूत

काल में बहुत कुछ कर डालते अथवा भविष्यत् में काम करने के स्वप्न देखना मूर्खता है; परन्तु पश्चात्ताप अथवा भविष्यत् के स्वप्नों को छोड़ कर 'अब' काम करना बुद्धिमानी है।

जो मनुष्य अतीत अथवा भविष्यत् काल पर विचार करता है वह वर्तमान समय को नष्ट करता रहता है; वह वर्तमान समय में कुछ नहीं करता। सब काम केवल वर्तमान समय में ही हो सकते हैं। जिस मनुष्य में विवेक-बुद्धि नहीं है और जो अयथार्थ बात को यथार्थ समझता है वही इस प्रकार कहता है– "यदि मैंने पिछले सप्ताह में, पिछले महीने में अथवा पिछले वर्ष अमुक कार्य किया होता तो मुझे आज उसका शुभ फल मिलता" अथवा "मैं जानता हूँ कि मेरा सब से अधिक कल्याण किस काम के करने से हो सकता है, और मैं उस काम को कल करूँगा।" स्वार्थ प्रेमी वर्तमान काल की महत्ता तथा मूल्य को नहीं समझ सकते और यह नहीं जान सकते कि वर्तमान काल ही यथार्थ वस्तु है और भूत तथा भविष्यत् केवल उसके निःसार प्रतिबिम्ब हैं। यह कहने में कुछ अत्युक्ति न होगी कि भूत तथा भविष्यत् काल का अस्तित्व केवल इतना ही है कि वे छाया हैं और भूतकाल की बातों का पश्चात्ताप करने में अथवा भविष्यत् काल की स्वार्थमय कल्पनाओं में अपने जीवन को व्यतीत करना जीवन की यथार्थता को (जो वर्तमान काल में है) खो देना है। वर्तमान काल पर ही मनुष्य भरोसा रख सकता है। इस काल को बड़ी सावधानी के साथ उपयोग में लाकर हमको अपना कल्याण करना चाहिए।

इसी समय मनुष्य में सब कुछ शक्ति मौजूद है; परन्तु

वह यह बात नहीं जानता और कहता है कि—" मैं अगले साल अथवा इतने वर्षों में अथवा इतने जन्मों में निर्दोष हो जाऊँगा।" परन्तु जो मनुष्य ईश्वर के धाम में प्रवेश कर चुके हैं और जो वर्तमान काल की यथार्थता को समझते हैं वे कहते हैं कि—" मैं अब निर्दोष हूँ।" वे वर्तमान काल में न तो कोई पाप कर्म करते हैं और न अपने विचारों में अपवित्रता आने देते हैं। न वे मुड़ कर भूतकाल को देखते हैं और न भविष्यत् पर दृष्टिपात करते हैं। इसी लिए वे सदा पवित्र और सुखी बने रहते हैं।

अपना यह सिद्धान्त बनालो—" मैं अपने आदर्श के अनुसार अभी से चलूँगा। मैं उन प्रलोभनों की ओर ध्यान तक न दूँगा जो मुझे मेरे आदर्श से गिराना चाहते हैं। मैं अपने आदर्श पर दृढ़ रहूँगा।" इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेने से और इस सिद्धान्त के अनुसार चलने से तुम परमात्मा में तल्लीन रहोगे और तुम सदा सत्य पर दृढ़ रहोगे।

भूत अथवा भविष्यत् काल का सहारा कभी न टटोलो और अपनी स्वाभाविक और ईश्वरीय शक्ति को 'अब' प्रकट करो। तुम भविष्यत् में जो कुछ होने की इच्छा रखते हो अथवा आशा करते हो वही तुम 'अब' बन सकते हो। चूँकि तुम आत्मोन्नति के कार्यों को सदा टालते रहते हो इसीलिए तुम सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। याद रक्खो कि चूँकि तुम में टालने की शक्ति है। इसलिए तुम में सिद्धि प्राप्त करने की भी शक्ति है; यदि तुम इस सिद्धान्त को हृदयंगम कर लो तो तुम आज ही अपने आदर्श पर पहुँच सकते हो और उससे फिर कभी विचलित नहीं हो सकते।

सदाचरण का यह अर्थ है कि मनुष्य प्रतिदिन अपनी पाप वासनाओं का सामना करता रहे और उनको उभरने न दे, परन्तु पवित्रता का यह अभिप्राय है कि मनुष्य पाप की ओर दृष्टिपात भी न करे और उसे विस्मृत के गढ़े में डाल दे जिससे उसका वहीं पर अंत हो जाय और यह बात केवल वर्तमान समय में ही हो सकती है। अपनी आत्मा से यह मत कहो कि "तुम कल अधिक पवित्र हो जाओगी" किन्तु उससे यह कहो कि "तुम अभी पवित्र हो जाओगी।" कल के भरोसे पर काम कभी नहीं हो सकता। और जिस मनुष्य को भविष्यत् पर विश्वास है उसे निरंतर असफलता होती रहेगी और वह आज पाप में फँसा रहेगा।

क्या तुम कल अपने आदर्श से च्युत हो गये थे? क्या तुम ने कल कोई घोर पाप किया था? यदि ऐसा है तो उस पाप कर्म को तुरंत ही तज दो और अब पाप मत करो। तुम तो अपने पिछले पापों पर पश्चात्ताप करते रहते हो परन्तु उसी समय वर्त्तमान काल में तुम्हारी आत्मा का पाप से बंधन हो जाता है, क्योंकि तुम उस समय अपनी आत्मा की रक्षा में दत्तचित नहीं रहते। भूत काल तो व्यतीत हो चुका; अब उसमें सुधार नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारा कल्याण भूतकाल की बातों पर पश्चात्ताप करने से नहीं, किन्तु वर्तमान काल की बातों को सुधारने से हो सकता है।

जो मूर्ख वर्तमान काल में उद्योग करने के उत्तम मार्ग को छोड़ कर टालमटोल के कुमार्ग को ग्रहण करता है वह इस प्रकार कहता है, "मैं कल जल्दी उठूँगा; मैं कल अपने ऋण

से मुक्त हो जाऊँगा, मैं अपनी इच्छाओं को कल कार्यरूप में परिणत करूँगा।" परन्तु वह बुद्धिमान् मनुष्य, जो वर्तमान काल के महत्व को समझता है, आज जल्दी उठता है, आज ही उऋण होता है और अपनी इच्छाओं को आज ही कार्यरूप में परिणत करता है और इसलिए बल, शान्ति तथा सफलता सदा उसके साथ रहती हैं।

जो कार्य अब किया गया है वह कभी नहीं मिट सकता, परन्तु जो काम कल किया जाने को है वह, संभव है, कभी न हो, बुद्धिमानी इस बात में है कि जो समय अभी नहीं आया उसका ध्यान छोड़ दिया जाय और जो समय वर्तमान है उस पर ध्यान दिया जाय और उसका उपयोग ऐसी एकाग्रता तथा इतने आत्मिक बल के साथ किया जाय कि हमको उसके विषय में फिर कभी पश्चात्ताप करने का मौक़ा न मिले।

जब स्वार्थ के मेघ मनुष्य की ज्ञान चक्षुओं को ढक लेते हैं तब वह कहता है कि "मैं अमुक दिन पैदा हुआ था, अब मेरी आयु इतनी हो गई और मेरे भाग्य में जिस दिन मरना लिखा है उसी दिन मैं मर जाऊँगा।" परन्तु वह न तो उत्पन्न हुआ था और न वह मर सकता है, क्योंकि जो पदार्थ अमर है और जो अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा उसका जन्म मरण कैसे हो सकता है? यदि मनुष्य अपने भ्रम को दूर कर दे तो उसे मालूम हो जायगा कि हमारे शरीर का जन्म तथा मरण हमारी यात्रा की घटनाएँ हैं, न कि उसका आदि और अंत।

दिव्य जीवन।

जब मनुष्य यह सोचता है कि अमुक कार्य का आदि बड़ा सुखमय था और भविष्यत् में इसका अंत दुःखपूर्ण होगा तब उसकी आँखे अंधी हो जाती हैं, जिस के कारण वह अपने अमरत्व को नहीं देख सकता ; उसके कान बंद हो जाते हैं जिसके कारण वह सुख की मीठी ध्वनि को नहीं सुन सकता और उसका हृदय पत्थर सा हो जाता है जिसके कारण वह शान्ति की तान को सुन कर भी हिलता जुलता नहीं।

संसार और उसके समस्त पदार्थ वर्तमान समय में मौजूद हैं। अपना हाथ बढ़ाओ और विवेक रूपी फलों को प्राप्त करो। संग्राम को, जिसका कारण लोभ है, शोक को, जिसका कारण स्वार्थपरता है, पश्चात्ताप को, जिसका कारण मूर्खता है, तिलाञ्जलि दे दो, और पवित्र जीवन व्यतीत करने पर संतोष करो। 'अब' काम करो तो ऐसा मालूम होगा कि तुम्हारे सब काम हो गये : अपना जीवन 'अब' पवित्र बनालो, तो तुम को पूर्ण सुख का अनुभव होने लगेगा ; अपना सुधार 'अब' करो तो तुम को अनुभव होगा कि हम निर्दोष हो गये ।

प्राकृतिक सरलता।

जीवन सरल है, विश्व भी सरल है। पेचीदगी, अज्ञान और भ्रम के कारण पैदा होती है। माया का परदा हट जाने से विश्व में जो सरलता दिखाई देती है वही प्राकृतिक सरलता है। जब मनुष्य स्वकृत भ्रमजाल में हो कर विश्व को देखता है तब उसे बड़ी भारी पेचीदगी और अथाह गूढ़ता दिखाई देती है और इसलिये वह स्वरचित भूलभुलइयों में भटकता फिरता है। यदि मनुष्य अहंकार को तिलांजलि दे दे तो उसे विश्व की प्राकृतिक सरलता का सौंदर्य दिखाई दे सकता है। मनुष्य में जो "मैं" की भावना भरी हुई है यदि वह उसको दूर कर दे तो उसके सारे भ्रम दूर हो जायँगे। वह पुनः एक छोटा बालक बन जायगा और उस में प्राकृतिक सरलता आ जायगी।

जब मनुष्य ममत्व को सर्वथा भूल जाता है तब वह एक दर्पण बन जाता है जिस में विश्व का यथार्थ रूप झलकने

लगता है, उसकी आँख खुल जाती है, उसका भ्रम दूर हो जाता है और उसको सत्य का ज्ञान हो जाता है ।

जिस प्रकार 'एक' का अंक सभी संख्याओं का आधार है इसी प्रकार विश्व भी वास्तव में 'एक' ही है ।

यदि मनुष्य एकांगी जीवन छोड़ कर सर्वांगपूर्ण जीवन व्यतीत करे तो उसको प्राकृ तक सरलता के दर्शन होंगे । एक अंग में सर्व अंग कैसे गर्भित हो सकते हैं ? परन्तु सर्व अंगों में एक अंग बड़ी सुगमता के साथ गर्भित रहता है । पापी पवित्रता को कैसे देख सकता है ? परन्तु पवित्र आत्मा बड़ी सुगमता से पाप को समझ सकता है । जो मनुष्य महानता प्राप्त करना चाहता है (परमोच्च पद पर पहुँचना चाहता है) उसे लघुता को त्याग देना चाहिए । अकेले स्वर को मनुष्य भूल जाते हैं, परन्तु वह संपूर्ण राग के भीतर गर्भित रहता है, इसी प्रकार जो मनुष्य अपने आप को मनुष्य जाति के प्रेम में भुला देता है वह मोक्ष के गान को सुन सकता है । जिस प्रकार पानी की बूँद सागर में लीन हो कर बड़ा भारी उपकार करती है, इसी प्रकार जो मनुष्य दूसरों के प्रेम में लीन हो जाता है वह बड़े पुण्य का भागी होता है और अक्षय सुख-सागर का एक अंग बन जाता है ।

जब मनुष्य यह जान जाता है कि निज आत्मा का ज्ञान प्राप्त किये बिना संसार का ज्ञान प्राप्त करना असंभव है तब वह उस मार्ग पर चलता है जो उसे प्राकृतिक सरलता की ओर ले जाता है । ज्यों ज्यों वह अपने अंतरंग की छान बीन करता जाता है त्यों त्यों उसे संसार का ज्ञान होता जाता है ।

परमेश्वर के विषय में तर्क वितर्क करना छोड़ दो और अपने भीतर विश्वव्यापी प्रेम की वेलि की खोज करो। ऐसा करने से तुम को तर्क वितर्क की निःसारता मालूम हो जायगी और तुम अपने आप को जान कर परमेश्वर को जान जाओगे।

जो मनुष्य अपनी बुरी वासनाओं को (लोभ, क्रोध इत्यादि को तथा भिन्न भिन्न बातों के विषय में अपना मंतव्य स्थिर करने को) नहीं छोड़ता वह न तो कुछ देख सकता है और न कुछ जान सकता है। चाहे वह कालिजों में विद्वान् समझा जाय, परन्तु वह बुद्धिमत्ता के विद्यालय में मंदधी गिना जायगा।

जो मनुष्य ज्ञान की कुंजी को प्राप्त करना चाहता है उसे उस कुंजी को स्वयं खोजना पड़ेगा। तुम्हारे पाप और तुम दो भिन्न भिन्न पदार्थ हैं। तुम्हारे पाप तुम्हारे अंग भी नहीं हैं। तुम्हारे पाप ऐसे रोग हैं जिन से तुम प्रेम करने लगे हो। यदि तुम पापों से लिपटना छोड़ दो तो वे भी तुम से लिपटना छोड़ देंगे। यदि तुम अपने पापों को तिलांजलि दे दो, तो तुम अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को देख सकोगे। तब तुम को आत्मज्ञान हो जायगा। तुम यह जान जाओगे कि हमारे भीतर कोई अटल सिद्धान्त निहित हैं, हम अमर हैं और हम में अनन्त पवित्रता है।

अपवित्र मनुष्य यह समझता है कि अपवित्रता ही आत्मा का निज स्वरूप है, परन्तु पवित्र मनुष्य को अपनी पवित्रता का ज्ञान होता है और वह सब मनुष्यों की पवित्र दशा को भी

देख सकता है, क्योंकि उसकी दृष्टि दूसरों के पाप रूपी पर्दों को भेद सकती है। पवित्र मनुष्य की बातें इतनी सरल होती हैं कि उसे अपनी पवित्रता के सबूत में तर्क करने की आवश्यकता नहीं होती परन्तु अपवित्र मनुष्य की बातें इतनी पेचीदा होती है कि उसे अपनी रक्षा के लिए अनेक दलीलें देनी पड़ती हैं। सत्य आत्मा का निज स्वरूप है। जो मनुष्य सत्य के सिद्धान्त पर चलता है उसका जीवन ही उसका साक्षी हो जाता है। वह न तो किसी से तर्क वितर्क करता है और न बक बक करता है, किन्तु अपने सिद्धान्त को सदा अपने कार्यों के द्वारा प्रकट करता रहता है।

प्राकृतिक सरलता इतनी सरल है कि उसको मनुष्य उस समय तक नहीं देख सकता जब तक वह सारी बातों से अपना संबंध न तोड़ दे। महराब इसलिए मज़बूत होती है कि उसके नीचे शून्य स्थान होता है। इसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य अपने आप को शून्य कर देने से (स्वार्थ को निकाल देने से) सशक्त और अजेय हो जाता है।

विनय, संतोष, प्रेम और बुद्धिमत्ता ये प्राकृतिक सरलता के प्रधान अंग हैं ; इसलिए सदोष मनुष्य प्राकृतिक सरलता को नहीं समझ सकते। जिस मनुष्य में बुद्धिमत्ता है वही बुद्धिमत्ता को समझ सकता है। इसीलिए मूर्ख कहते हैं कि "कोई मनुष्य बुद्धिमान् नहीं है।" सदोष मनुष्य कहते हैं कि "कोई मनुष्य निर्दोष नहीं हो सकता" : और इसलिए वे दोष युक्त ही बने रहते हैं। चाहे कोई सदोष मनुष्य जन्म भर किसी निर्दोष

मनुष्य के साथ रहे, परन्तु फिर भी वह उसकी निर्दोषता को न देख सकेगा। वह विनय को कायरता समझेगा और संतोष प्रेम तथा दयाभाव को निर्बलता समझेगा; और बुद्धिमत्ता उसे मूर्खता दिखाई देगी। जो मनुष्य सर्वथा निर्दोष हो गये हैं वे ही ठीक ठीक निर्णय कर सकते हैं; इसलिए जब तक मनुष्य स्वयं निर्दोष न हो जाय तब तक उसे अपना मंतव्य स्थिर न करना चाहिए।

जब मनुष्य प्राकृतिक सरलता को प्राप्त कर लेता है तब उसके आगे से अज्ञान का अंधकार हट जाता है और वह सब पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को देखने लगता है। जो मनुष्य निज स्वरूप को पहिचान जाता है वह विश्व के यथार्थ रूप को भी जान जाता है। जो मनुष्य अपने हृदय को पवित्र कर लेता है वह दूसरों के हृदयों की बातों को भी जान जाता है और जो मनुष्य अपने विचारों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह दूसरों के विचारों को भी जान जाता है। इसलिए जो मनुष्य पवित्र है उसे अपने पक्ष का समर्थन नहीं करना पड़ता, किन्तु वह दूसरों के विचारों को अपने विचारों के अनुकूल कर लेता है।

जब मनुष्य पवित्र हो जाता है तब उसके सामने से सब समस्याएँ दूर हो जाती हैं; इसलिए पवित्रात्मा को 'भ्रमनाशक' कहा जाता है। जब पाप नहीं रहता तब कौन सी समस्या मनुष्य को सता सकती है? उन मनुष्यों पर बड़ा तरस आता है जो जीवन के घोर संग्राम में युद्ध कर रहे हैं और विश्राम नहीं लेते। वे उस पवित्रता को क्यों नहीं खोजते जो उनके

भीतर छिपी हुई है और उसको अपने जीवन का सिद्धान्त क्यों नहीं बनाते ? जो मनुष्य पवित्रता को खोज निकालेगा वह माया रूपी पर्दे को हटा कर संतोष शान्ति और सुख के धाम में प्रवेश कर सकेगा, क्योंकि पवित्रता और प्राकृतिक सरलता दोनों एक ही वस्तु हैं।

अक्षय बुद्धिमत्ता ।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी द्रव्य, अपने शरीर अपनी परिस्थितियों, दूसरों के मंतव्यों तथा उनके व्यवहार से अपने आप को बढ़ कर समझे, जब तक वह ऐसा न समझेगा तब तक वह बलवान् और दृढ़ नहीं हो सकता । उसको अपनी इच्छाओं और मंतव्यों से भी अपने आप को बढ़ कर समझना चाहिए । जो मनुष्य ऐसा नहीं समझता उसकी गिनती बुद्धिमानों में नहीं हो सकती ।

जो मनुष्य अपने आप और अपनी संपत्ति में कुछ भेद नहीं मानता वह अपनी संपत्ति के नष्ट हो जाने पर यह समझता है कि मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया, जो मनुष्य अपने आप को अपनी परिस्थितियों का दास समझता है वह अपनी बाह्य दशा के साथ साथ बदलता रहता है । इसी प्रकार जो मनुष्य दूसरों की

प्रशंसा को अपने जीवन का आधार बनाता है वह बहुत उद्विग्न रहता है और उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है ।

अपने आप को प्रत्येक वाह्य पदार्थ से पृथक् कर लेने और अपनी आंतरिक सद्वृत्ति के अनुसार चलने को अक्षय बुद्धिमत्ता कहते हैं । जिस मनुष्य के पास ऐसी बुद्धिमत्ता है उसकी दशा अमीरी और ग़रीबी दोनों में एक सी रहती है । न तो अमीरी उसके बल को बढ़ा सकती और न गरीबी उसकी शान्ति को भंग कर सकती है । जिस मनुष्य ने अपने अंतरस्थ दोषों को दूर कर दिया है उसे अमीरी दूषित नहीं कर सकती ; इसी प्रकार ग़रीबी उस मनुष्य को नीचे नहीं गिरा सकती जिसने अपनी आत्मा को नीचे गिराना छोड़ दिया है ।

जो मनुष्य किसी वाह्य बात अथवा घटना का दास नहीं बनता और उन बातों अथवा घटनाओं को अपने लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद समझता है वही बुद्धिमान है । जो मनुष्य बुद्धिमान् हैं वे सब घटनाओं को कल्याणकारी समझते हैं और चूँकि उनकी प्रवृत्ति पाप की ओर नहीं होती इसलिए उनकी बुद्धिमत्ता प्रतिदिन बढ़ती जाती है । वे सब बातों से कुछ न कुछ काम निकालते हैं और उनको अपने अनुकूल बना लेते हैं । उनको अपनी भूलें तुरंत ही मालूम हो जाती हैं और वे उनसे परमोत्तम शिक्षा-ग्रहण करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि ईश्वरीय आदेशों के अनुसार चलने में भूलें नहीं हो सकतीं । इसलिए वे शीघ्र ही परिपूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं । किसी वस्तु वा मनुष्य को देख कर उनके मन में मोक्ष उत्पन्न नहीं होता, किन्तु

वे उससे शिक्षा ग्रहण करते हैं । वे किसी से प्रेम की भीख नहीं माँगते, किन्तु स्वयं सब पर प्रेम रखते हैं, जो मनुष्य विचलित हुए बिना ही शिक्षा ग्रहण कर सकता है अथवा जो दूसरों के द्वारा प्यार न किये जाने पर भी उन के प्रति प्रेम प्रकट करता है उसमें अक्षय शक्ति है । जो मनुष्य अपने जी में यह कहता है कि "मैं सब मनुष्यों को शिक्षा दूँगा और स्वयं किसी से शिक्षा ग्रहण न करूँगा", वह न तो दूसरों को शिक्षा दे सकता है और न उनसे स्वयं शिक्षा ग्रहण कर सकता है । जब तक वह ऐसा विचार रक्खेगा तब तक वह मूर्ख ही बना रहेगा ।

मनुष्य को संपूर्ण बल, बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा ज्ञान अपने भीतर मिल सकता है, परन्तु उसे ये बातें अहंकार में नहीं मिल सकतीं ; वह इन बातों को आज्ञापालन, विनय और शिक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा के द्वारा प्राप्त कर सकता है, उसको ईश्वर की आज्ञा का पालन करना चाहिए और भोग-विलास में मग्न न रहना चाहिए । जो मनुष्य अहंकार को अपने जीवन का आधार बना लेगा और दूसरों से तथा अपने अनुभव से शिक्षा ग्रहण न करेगा वह अवश्य ही अपना सर्वनाश कर लेगा ; नहीं, नहीं, बल्कि अहंकार का विचार जी में आते ही उसका सर्वनाश हो जाता है । एक बार एक महात्मा ने अपने चेलों से कहा था कि "मेरे चेलों में से चेले अपने मार्ग को आप खोज सकेंगे, केवल अपने भरोसे पर काम करेंगे और दूसरों की सहायता को न टटोलेंगे, किन्तु सदा सत्य पर दृढ़ रहेंगे, सत्य को ही अपना पथ प्रदर्शक मानेंगे, सत्य के ही द्वारा मुक्ति को प्राप्त करने की आशा रक्खेंगे, वे आत्मोत्सर्ग की सर्वोच्च सीढ़ी पर पहुँच

सकेंगे ! परन्तु उनमें शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा अवश्य होनी चाहिए" बुद्धिमान मनुष्य शिक्षा ग्रहण करने के लिए सदा उत्सुक रहते हैं, परन्तु वे शिक्षा देने के लिए उत्सुक नहीं रहते क्योंकि वे जानते हैं कि सच्चा गुरु प्रत्येक मनुष्य के हृदय में है और वह अंत में प्रत्येक मनुष्य को वहीं मिलेगा । मूर्ख अहंकार के वशीभूत हो कर शिक्षा देने के बड़े उत्सुक रहते हैं और शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक नहीं होते ; वे अपने हृदय में उस धर्मगुरु को नहीं खोजते जो विनयपूर्वक उपदेश ग्रहण करनेवाली आत्मा को बुद्धिमत्ता की शिक्षा देता है । आत्मनिर्भरता सीखो, परन्तु अपनी आत्मनिर्भरता को स्वार्थमय मत होने दो ।

मूर्खता तथा बुद्धिमत्ता, निर्बलता तथा बल का निवास मनुष्य के भीतर है । ये बातें न तो किसी बाह्य पदार्थ में रहती हैं और न इनकी उत्पत्ति किसी बाह्य कारण से होती है । जो मनुष्य बलवान् होना चाहता है उसे स्वयं बल संचय करना चाहिए ; इसी प्रकार जो मनुष्य अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करना चाहता है उसे यह काम स्वयं करना चाहिए । तुम दूसरों से शिक्षा ग्रहण कर सकते हो, परन्तु तुम को अपना सुधार आप करना पड़ेगा । बाह्य अवलम्बों को छोड़ दो और उस सत्य के ऊपर भरोसा करो जो तुम्हारे भीतर है । प्रलोभन के समय कोई धर्म मनुष्य की रक्षा नहीं कर सकता ; ऐसे समय में मनुष्य को उस अंतरस्थ ज्ञान की आवश्यकता होती है जो प्रलोभन का गला घोंट देता है । आपत्ति के समय काल्पनिक दर्शन शास्त्र कुछ काम नहीं देता ; ऐसे समय मनुष्य में वह अंतरस्थ बुद्धिमत्ता होनी चाहिए जो शोक का अंत कर देती है ।

संसार के सब धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को साधुता सिखाना है, परन्तु साधुता सब धर्मों से भिन्न है। इसी प्रकार बुद्धिमत्ता, जिसका प्रचार करना प्रत्येक दर्शनशास्त्र का उद्देश्य है, दर्शन-शास्त्रों से जुदा है। अपने मस्तिष्क में पवित्र विचारों को निरंतर स्थान देने से और शुभ कर्म करने से ही अक्षय बुद्धि-मत्ता की प्राप्ति हो सकती है।

मनुष्य चाहे जिस स्थिति में हो, परन्तु वह सदा सत्य मार्ग को खोज सकता है; और इस मार्ग को खोजने की रीति यही है कि वह अपनी वर्तमान दशा का ऐसा सदुपयोग करे कि वह बलवान् और बुद्धिमान् हो जाय। पुरस्कार की खोज और दंड के भय को सदा के लिए छोड़ दो और अपने आप को तथा अपनी विलासप्रियता को भूल कर बल, पवित्रता और आत्मनिर्भरता को प्राप्त करो और अपने समस्त कर्तव्यों का पालन करने में हर्ष सहित दत्तचित्त हो; इस प्रकार कार्य करने से अक्षय बुद्धिमत्ता और दैवी संतोष और बल की प्राप्ति अवश्य होगी। मनुष्य चाहे किसी स्थिति में हो, परन्तु उसके कर्त्तव्य उसके साथ रहते हैं। तुम्हारा आदर्श तुम्हारी वर्तमान स्थिति में है; अन्यथा वह कहीं नहीं है। अपना सुधार करो और अपने आप को अपने आदर्श के अनुकूल बनाओ। आदर्श तुम्हारे ही भीतर है और रुकावट भी तुम्हारे ही भीतर है। तुम्हारी वर्तमान स्थिति में ही वह सामग्री मौजूद है जिस में से तुम अपने आदर्श को गढ़ सकते हो। तुम अपनी वर्तमान स्थिति की शिकायत करते हो और देवों से प्रार्थना करते हो कि हम को धन ऐश्वर्य दो, परन्तु यह वृथा है। याद रक्खो

कि तुम को जिस वस्तु की खोज है वह तुम्हारे भीतर पहले से ही मौजूद है और अब भी है; हाँ, उसके देखने के लिए आँखें चाहिए।

सुख तुम्हारे भीतर है, न कि तुम्हारे पड़ोसी के धन में। क्या तुम निर्धन हो यदि तुम इतने बलवान नहीं हो कि तुम, अपनी निर्धनता को उपेक्षा की दृष्टि से देख सको, तो तुम अवश्य ही निर्धन हो! क्या तुम को आपत्तियाँ सहन करनी पड़ी हैं? क्या तुम अपनी आपत्तियों को चिन्ता के द्वारा दूर करना चाहते हो? क्या तुम फूटे हुए बरतन को रो रो कर जोड़ सकते हो अथवा किसी खोये हुए सुयोग को पश्चात्ताप द्वारा प्राप्त कर सकते हो? यदि तुम किसी दुःख का बुद्धिमानी के साथ सामना करो, तो यह असंभव है कि वह दूर न हो। जो आत्मा मोक्षमार्ग पर चल रही है वह भूत, वर्तमान अथवा भविष्यत् की बातों पर शोक नहीं करती, किन्तु वह सदा दैवी विशिष्टता को खोजती रहती है और प्रत्येक घटना से बुद्धिमत्ता की शिक्षा ग्रहण करती है।

भय स्वार्थपरता की छाया है और वह प्रेम और बुद्धिमत्ता के सामने नहीं ठहर सकता। संदेह, चिन्ता और दुःख का निवास स्वार्थरूपी अधोलोक में है और ये बातें उस मनुष्य को कष्ट नहीं दे सकतीं जो आत्मोन्नति के ऊर्द्धलोक में पहुँच गया है। जिस मनुष्य ने जीवन के वास्तविक तत्त्व को समझ लिया है उस से शोक भी दूर रहता है। वह मनुष्य जीवन को प्रेममय पाता है। वह स्वयं प्रेम में मग्न हो जाता है और चूँकि वह

सबको प्रेम करता है और उसका मस्तिष्क घृणा और मूर्खता से छुटकारा पा जाता है, इसलिए वह प्रेम के आश्रय में पहुँच जाता है, जहाँ वह सुरक्षित रहता है। चूँकि वह किसी वस्तु को अपनी नहीं समझता, इसलिए वह हानि नहीं उठाता। चूँकि वह भोगविलास की खोज में नहीं रहता, इसलिए उसे शोक मनाने का अवसर नहीं मिलता। और चूँकि वह अपनी समस्त शक्तियों को दूसरों की सेवा में लगा देता है इसलिए वह सदा सुखी रहता है।

इन बातों को अच्छी तरह याद रक्खो:—अपने आप को सुधारना या बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ में है। तुम को शुभ व अशुभ फल अपने कर्मों के कारण मिलता है। यदि तुम दास बनना चाहते हो तो तुम दास बने रहोगे: यदि तुम अपने आप को स्वामी बनाओगे तो तुम स्वामी बन जाओगे। यदि तुम अपने जीवन की इमारत अपनी पाशविक वासनाओं और मानसिक तर्क वितर्कों पर खड़ी करोगे तो वह इमारत शीघ्र ही गिर पड़ेगी: परन्तु यदि तुम उस इमारत को सदाचार और पवित्रता के आधार पर खड़ी करोगे, तो कोई शक्ति उसको न हिला सकेगी।

विनयशीलता की शक्ति ।

पर्वत को बड़ी बड़ी आँधियाँ भी नहीं हिला सकतीं परन्तु वह पक्षियों और भेड़ों के छोटे छोटे बच्चों को आश्रय देता है : और यद्यपि सब मनुष्य उस को पैरों से कुचलते हैं तथापि वह उनकी रक्षा करता है और उन्हें अपने वक्ष पर रखता है । यही बात विनय-शील मनुष्य के विषय में भी कही जा सकती है । यद्यपि उसे कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता तथापि वह दया से पसीज कर छोटे से छोटे प्राणी की भी रक्षा करता है, और चाहे दूसरे मनुष्य उससे घृणा करें, परन्तु वह सब मनुष्यों को आत्मोत्सर्ग की ओर ले जाता है, उनसे प्रेम करता है और उनकी रक्षा करता है ।

जिस प्रकार पर्वत अपने बल के कारण बड़ा तेजवान् मालूम होता है इसी प्रकार ईश्वर का भक्त भी अपनी विनय-शीलता के कारण बड़ा तेजस्वी मालूम होता है ; उसका हृदय

बड़ा उदार होता है और वह प्राणीमात्र के प्रति प्रेम प्रकट करता है। जिस प्रकार पर्वत के अधोभाग में घाटियाँ और कुहरा होता है, परन्तु उसका शिखर आकाश से बातें करता है और सारे झंझटों से दूर रहता है, इसी प्रकार यद्यपि विनयशील मनुष्य को अपने जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और अनेक आपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं तथापि उसका उद्देश्य बहुत ऊँचा होता है और संसार के झंझट उसे उद्विग्न नहीं कर सकते।

जिसने विनयशीलता का गुण प्राप्त कर लिया है वह परम पद को पा गया है; उसने परमात्मा को पहिचान लिया है और उसको यह ज्ञान हो गया है कि मुझ में भी परमात्मा के समान गुण हैं। वह जान जाता है कि सब मनुष्यों में ईश्वरीय गुण मौजूद है, परन्तु वे लोग ऐसी निद्रा में पड़े हुए हैं कि अपने गुणों से अनभिज्ञ हैं। विनयशीलता परमात्मा का गुण है और इसलिए उसमें बड़ी शक्ति है। विनयशील मनुष्य मुक़ाबला नहीं करता और इसलिए विजय प्राप्त कर लेता है और स्वयं हार खा कर वह अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य अपनी शक्ति से दूसरों के ऊपर विजय प्राप्त करता है वह बलवान् है, परन्तु जो मनुष्य विनयशीलता के द्वारा अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है वह महाबली है। जो मनुष्य बलपूर्वक दूसरे पर विजय प्राप्त करता है वह स्वयं पराजित किया जा सकता है, परन्तु जो मनुष्य विनयशीलता के द्वारा अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है वह कभी पराजित नहीं हो सकता, क्योंकि

मानुषिक शक्तियाँ ईश्वरीय शक्तियों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती। विनयशील मनुष्य पराजित हो हो कर विजय प्राप्त करता है। यथार्थ बात का नाश नहीं हो सकता; केवल अयथार्थ बात का नाश होता है। जब मनुष्य अपने भीतर उस तत्त्व को खोज लेता है जो अक्षय और अपरिवर्त्तनशील है तब वह यथार्थ बात को पा जाता है और विनयशील हो जाता है। उसके पास आपत्तियाँ आवेंगी, परन्तु उसको कष्ट न पहुँचा सकेंगी और अन्त में लौट जायँगी।

मनुष्य की विनयशीलता का पता आपत्ति के समय लगता है। आपत्ति के समय दूसरे मनुष्यों के पैर उखड़ जाते हैं, परन्तु वह जमा रहता है। दूसरे मनुष्यों के क्रोध अथवा पक्षपात के कारण वह अधीर नहीं होता और जब वे उसका विरोध करते हैं तब वह न तो उन से लड़ता है और न पुकार करता है। वह जानता है कि दूसरों की बुरी बातें मुझ को हानि नहीं पहुँचा सकतीं, क्योंकि मैंने बुरी बातों को स्वयं अपने भीतर से निकाल दिया है। वह पवित्रता की अपरिवर्त्तनशील शक्ति के कारण सुरक्षित रहता है।

विनयशील मनुष्य नाम का भूखा नहीं होता। वह न तो गर्व करता है और न अपनी शक्तियों को दूसरों को जतलाना चाहता है। वह दूसरों की प्रशंसा की परवाह नहीं करता। चाहे कोई देखे या न देखे, वह कभी विनयशीलता को हाथ से नहीं देता। चूँकि विनयशीलता आध्यात्मिक गुण है इसलिए उसको केवल भीतरी आखों से ही देखा जा सकता है। जिन

मनुष्यों ने अपनी आत्मा की उन्नति नहीं की है वे न तो उसे देख सकते हैं और न उस से प्रेम करते हैं, क्योंकि वे सांसारिक चमक दमक में फँस जाते हैं और उसके कारण अन्धे हो जाते हैं। इतिहास में भी विनयशील मनुष्यों का नाम नहीं आता। इतिहास में युद्धों और मनुष्यों की लौकिक उन्नति का वर्णन होता है, परन्तु विनयशील मनुष्य शान्ति और सौजन्य को सर्वोपरि समझता है। इतिहास में लौकिक कार्यों का वर्णन होता है, न कि आध्यात्मिक कार्यों का। यद्यपि विनयशील मनुष्य अंधकार में रहता है तथापि वह छिपा नहीं रहता, क्योंकि प्रकाश गुप्त नहीं रह सकता; जब वह संसार से चल बसता है तब भी संसार में उसका प्रकाश बना रहता है और संसार उसकी भक्ति करता रहता है और उस मनुष्य के नाम पर जिस को उसने कभी नहीं देखा, जान देता है।

विनयशील मनुष्य को बहुधा लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उसकी बुराई करते हैं अथवा उसकी बातों को ठीक ठीक नहीं समझते, परन्तु वह इन बातों की परवाह नहीं करता और इनको इतना तुच्छ समझता है कि वह कभी इनका प्रतिवाद नहीं करता, वह जानता है कि ये बातें उसको तनिक भी हानि नहीं पहुँचा सकतीं। इसलिए वह उन मनुष्यों के साथ भलाई करता है जो उसके साथ बुराई करते हैं, वह किसी का विरोध नहीं करता और इस लिए सब पर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो मनुष्य यह सोचता है कि दूसरे मुझ को हानि पहुँचा

सकते हैं और जो उनसे अपनी रक्षा करता है और उनके सामने अपनी बातों का समर्थन करता है वह विनयशीलता का अर्थ नहीं समझता। वह जीवन के मर्म को नहीं जानता। "उस ने मुझ को गालियाँ दी और मेरा अपमान किया, उसने मुझ को मारा, उसने मुझ को हरा दिया उसने मुझ को लूट लिया," जो मनुष्य ऐसे विचार अपने जी में लाते हैं वे द्वेष को नहीं तज सकते, क्योंकि द्वेष का बहिष्कार प्रेम के द्वारा होता है, न कि द्वेष के द्वारा तुम क्यों कहते हो कि "हमारे पड़ोसी ने हमारे विषय में झूठी बातें कही हैं!" इस से तुम्हारा क्या हरज़ है? क्या झूँठ से तुम को हानि पहुँच सकती है? जो बात झूँठ है और उसका अंत वहीं पर हो जाता है। वह बेजान है और सिवा उस के और किसी को हानि नहीं पहुँचा सकती जो उससे हानि पहुँचने की संभावना रखता है। यदि तुम्हारा पड़ोसी तुम्हारे विषय में झूँठ कहता है तो इस से तुम्हारा कुछ हर्ज नहीं हो सकता, परन्तु यदि तुम उस से लड़ोगे अथवा अपनी बात की सफ़ाई देना चाहोगे तो तुम को अवश्य हानि पहुँचेगी, क्योंकि ऐसा करने से तुम अपने पड़ोसी के झूँठ में जान डाल दोगे और उस से तुम को हानि पहुँचेगी। अपने हृदय से अनिष्टकर बातों को निकाल डालो और तब तुम को मालूम होगा कि दूसरों की अनिष्टकर बातों का विरोध करना कैसी मूर्खता है। क्या तुम्हारा यह खयाल है कि यदि तुम विरोध न करोगे तो दूसरे तुम को कुचल देंगे? यदि तुम्हारा यह विचार है तो तुम पहले से ही अपने आप को कुचला हुआ समझो। जिस अनिष्ट का कारण तुम को दूसरे मनुष्य मालूम होते हैं उसका कारण वास्तव में तुम ही हो।

किसी दूसरे मनुष्य का बुरा विचार, वचन अथवा कर्म तुम को तभी हानि पहुँचा सकता है जब तुम उसका विरोध करके उस में जान डाल दो और उस पर विचार करो। यदि कोई मनुष्य मुझ पर झूँठा कलंक लगावे तो यह काम उसका है, मुझे उस से क्या सरोकार ? मुझे अपनी आत्मा का सुधार करना है, न कि दूसरे कि आत्मा का। चाहे समस्त संसार मुझ पर मिथ्या दोषारोपण करे, परन्तु मुझे इससे कुछ मतलब नहीं ; मेरा काम तो यह है कि मैं अपनी आत्मा को पवित्र और प्रेममय रक्खूँ। जब तक मनुष्य अपने आप को निर्दोषी सिद्ध करने का प्रयत्न न छोड़ेंगे तब तक आपस के झगड़ों का अन्त नहीं हो सकता। जो मनुष्य चाहता है कि संसार में युद्धों का होना बन्द हो जाय उसे किसी दल का पक्ष ग्रहण न करना चाहिए। उसे अपना पक्ष भी छोड़ देना चाहिए। युद्ध करना बन्द कर देने से शान्ति मिल सकती है, न कि युद्ध करने से।

चूँकि विनयशील मनुष्य स्वत्व नहीं माँगता, इस लिए उसे अपनी रक्षा करने की अथवा अपने आप को निर्दोषी सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका जीवन प्रेममय होता है और इसलिए उसकी रक्षा उस प्रेम के द्वारा होती है जो विश्व का आधार है। वह न तो किसी वस्तु को अपनी कहता है और न स्वार्थ-साधन में लगा रहता है ; इस लिए उसको सब वस्तुएँ अपने आप मिल जाती हैं और सारा संसार उसकी रक्षा करता है।

जो मनुष्य यह कहता है कि " मैं विनयशीलता की परीक्षा

कर चुका हूँ परन्तु मुझे कुछ सफलता नहीं हुई" उसने विनयशीलता की परीक्षा नहीं की । विनयशीलता की परीक्षा थोड़ी देर के लिए नहीं की जा सकती । वह विनयशीलता तो स्वार्थ को सर्वथा त्याग देने से ही प्राप्त हो सकती है । विनयशीलता का यह अर्थ नहीं है कि मनुष्य केवल अपने कार्यों द्वारा दूसरों का विरोध न करे : विनयशीलता के लिए परमावश्यक बात यह है कि वह स्वार्थमय तथा विरोधी विचारों को सर्वथा त्याग दे । इसलिए विनयशील मनुष्य कभी "बुरा नहीं मानता" अथवा उसके "जी में कभी चोट नहीं लगती" । वह घृणा, मूर्खता अथवा वृथा अभिमान से कोसों दूर रहता है । विनयशील मनुष्य को कभी असफलता नहीं हो सकती ।

जो मनुष्य मुक्ति की अभिलाषा रखता है उसे विनयशीलता को प्राप्त करना चाहिए, अपने धैर्य और सहिष्णुता को प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिए, अपने मुख से कड़े वचनों का उच्चारण न करना चाहिए, और स्वार्थमय तर्क वितर्क को अपने मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए । यदि वह इन बातों पर ध्यान रक्खेगा तो उसके हृदय में विनयशीलता का पवित्र और कोमल पुष्प खिलेगा और अंत में वह उस दिव्य पुष्प की सुगंध पवित्रता और सौन्दर्य को जानेगा और विनयवान्, प्रसन्नचित्त तथा बलवान बन जायगा । इस बात से दुखी न हो कि तुम्हारे चारों ओर चिड़चिड़े स्वभाव के और स्वार्थी मनुष्य हैं, किन्तु इस बात पर हर्ष मनाओ कि तुम उनके समान नहीं हो और तुम अपने दोषों को देख सकते हो और अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करने तथा निर्दोष बनने के लिए निरंतर प्रयत्न कर रहे

हो। तुम में जितनी ही कठोरता और स्वार्थपरता है तुमको विनयशीलता और प्रेम की उतनी ही आवश्यकता है। यदि दूसरे तुम को हानि पहुँचाना चाहते हैं तो तुम्हारे लिए यह और भी आवश्यकीय है कि तुम दूसरों को हानि पहुँचाना छोड़ दो और उनसे प्रेम करो; यदि दूसरे मनुष्य विनयशीलता, नम्रता और प्रेम का उपदेश देते हों और स्वयं अपने उपदेश के अनुसार न चलते हों, तो तुम को दुखी न होना चाहिए, किन्तु तुम को अपने हृदय में तथा दूसरों से व्यवहार करते समय उपरोक्त बातों का पालन करना चाहिए। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम सारे संसार को उपरोक्त बातों की शिक्षा दे सकोगे, चाहे तुम किसी से उपदेश का एक शब्द भी न कहो। तुम ज्यों ज्यों विनयशील होते जाओगे त्यों त्यों विश्व के गुप्त से गुप्त रहस्यों को भी समझते जाओगे। जो मनुष्य अपने ऊपर अधिकार प्राप्त कर लेता है उससे कोई बात छिपी नहीं रहती। तुम कारणों के कारण को भी समझ जाओगे और भ्रम के पर्दों को एक एक करके उठा दोगे और अंत में जीवन के असली तत्त्व पर पहुँच जाओगे। इस प्रकार जब तुम जीवन का मर्म समझ जाओगे तब तुम सब जीवों को पहिचान सकोगे और प्रत्येक बात के असली कारण पर पहुँच सकोगे। फिर तुम अपनी, दूसरों की तथा संसार की चिन्ता न करोगे, किन्तु तुम देखोगे कि संसार की सब बाते एक व्यापक नियम के अनुसार होती हैं। चूँकि तुम में नम्रता आ जायगी इस लिए तुम उन बातों को भी अच्छा समझोगे जिनको दूसरे बुरा समझते हैं, उन लोगों से भी प्रेम करोगे जिनसे दूसरे घृणा करते हैं, उन अपराधों को भी क्षमा कर दोगे जिनको दूसरे

अक्षम्य समझते हैं, उन बातों को मान लोगे जिन पर दूसरे झगड़ते हैं और उन पदार्थों को छोड़ दोगे जिनको दूसरे ग्रहण करना चाहते हैं। दूसरे बलवान् होते हुए भी निर्बल रहेंगे और तुम निर्बल होते हुए भी बलवान् रहोगे ; बल्कि तुम सब के दिलों पर अपना अधिकार जमा लोगे ।

पवित्रात्मा ।

जो मनुष्य पवित्र है उस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता । कोई शत्रु उसको न तो हरा सकता है और न सता सकता है । उसकी रक्षा उसकी ईमानदारी और पवित्रता के द्वारा होती है ; उसको और किसी रक्षक की आवश्यकता नहीं ।

जिस प्रकार यह असंभव है कि पाप पुण्य पर अधिकार जमा सके इसी प्रकार अपवित्र मनुष्य पवित्र मनुष्य पर कभी अधिकार नहीं जमा सकता । मिथ्या दोषारोपण, घृणा और द्वेष न तो पवित्रात्मा के पास पहुँच सकते हैं और न उसका कुछ बिगाड़ सकते हैं, और जो मनुष्य उसको हानि पहुँचाना चाहते हैं उनको अंत में स्वयं तिरस्कार सहना पड़ता है ।

चूँकि पवित्र मनुष्य कोई काम ऐसा नहीं करता जिसे उसको दूसरों से छिपाना पड़े अथवा वह कोई इच्छा ऐसी नहीं

रखता है जिसको वह दूसरों पर प्रकट न कर सकता हो, इस लिए वह निर्भय रहता है और उसे कभी लज्जित नहीं होना पड़ता। वह जो काम करता है उसे दृढ़तापूर्वक करता है और जो बात कहता है वह खरी कहता है। वह किसी के आगे नहीं झिझकता ; जो मनुष्य किसी का अनिष्ट नहीं करता वह किसी से क्योंकर डर सकता है ? जो मनुष्य किसी को धोखा नहीं देता वह किसी के सामने क्योंकर लज्जित हो सकता है ? चूँकि वह किसी को हानि नहीं पहुँचाता इसलिए दूसरे भी उसको हानि नहीं पहुँचाते । इसी प्रकार चूँकि वह किसी को धोखा नहीं देता, इसलिए दूसरे भी उसे धोखा नहीं देते।

चूँकि पवित्र मनुष्य अपने सब काम बड़ी ईमानदारी और परिश्रम के साथ करता है और वह पाप से कोसों दूर रहता है इसलिए-उसे कोई किसी बात में दबा नहीं सकता । जिसने पवित्रता के अंतरस्थ शत्रुओं को मार डाला है उसे न तो कोई बाह्य शत्रु पराजित कर सकता है और न उसे बाह्य शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी पड़ती है क्योंकि उसकी पवित्रता ही उसके रक्षा के लिए यथेष्ट है।

जो मनुष्य अपवित्र है उसे प्रायः सभी बातों में दबना पड़ता है । चूँकि वह मनोविकारों और पक्षपात का दास बना रहता है और दूसरों के विषय में मिथ्या मंतव्य स्थिर कर लेता है, इसलिए उसको (जैसा कि वह समझता है) दूसरों के द्वारा सदा दुख पहुँचता रहता है । जब दूसरे उस पर दोषारोपण करते हैं तब उसे बड़ा दुःख पहुँचता है, क्योंकि वह

वास्तव में सदोष है ; और चूँकि उसके पास अपनी रक्षा करने के लिए पवित्रता नहीं होती, इसलिए वह बदला लेकर अथवा तरह तरह की दलीलें या धोखा दे कर अपने आप को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करता है।

जो मनुष्य पूर्णतया पवित्र नहीं है वह उन सब बातों में नीचा देखता है जिन में वह दोषयुक्त है, और यदि पवित्र मनुष्य अपनी पवित्रता से गिर कर एक पाप कर्म भी कर बैठता है तो वह अदण्ड नहीं रहता, क्योंकि पाप के कारण दूसरे उस पर सच्चा आक्षेप कर सकते हैं और उसे हानि पहुँचा सकते हैं, क्योंकि पहले उसने अपने आप को हानि पहुँचाई है।

यदि किसी मनुष्य के दुःख अथवा हानि का निमित्त कारण दूसरे मनुष्य हों, तो उसे अपने दोषों को देखना चाहिए, और यदि वह पक्षपात और आत्म-रक्षा के विचार को छोड़ देगा तो उसको मालूम होगा कि मेरा हृदय ही मेरे दुःख का उद्गम है।

पवित्र मनुष्य को, जिसने अपनी पाप वृत्तियों का नाश कर डाला है, कोई हानि नहीं पहुँच सकती। वह सदा शुभकर्म करता रहता है और मन, वचन अथवा काय से कोई पाप नहीं करता, इसलिए उसके जीवन में जितनी घटनाएँ होती हैं उनका फल उसे अच्छा ही मिलता है। कोई मनुष्य, घटना अथवा परिस्थिति उसे हानि नहीं पहुँचा सकती, क्योंकि जिस मनुष्य ने पाप के बंधनों को तोड़ दिया है उसको परिस्थितियों से कुछ हानि नहीं पहुँच सकती।

दिव्य जीवन।

जो मनुष्य दुखी, शोकाकुल और भग्नहृदय हैं वे सदा अनंत शान्ति की खोज में रहते हैं, ऐसे मनुष्यों को पवित्र जीवन की शरण में आना चाहिए; उनको तुरंत ही पाप रहित साम्राज्य में पदार्पण करना चाहिए, क्योंकि पवित्रात्माओं को शोक छू नहीं सकता; दुःख उस मनुष्य तक नहीं पहुँच सकता जो अपने जीवन को स्वार्थसाधन में नष्ट नहीं करता; और जो मनुष्य सब लोगों से मैत्रीभाव रखता है उसको कभी चिन्ता अथवा अशान्ति नहीं सताती।

भरपूर प्रेम ।

नवान् मनुष्यों को, जो मोक्षधाम में पहुँच गये हैं, विश्व और उसके समस्त पदार्थ एक नियम के अंतर्गत दिखाई देते हैं और वह नियम प्रेम का नियम है। वे देखते हैं कि प्रेम की शक्ति के द्वारा जीव और अजीव दोनों ही अपनी पर्यायों को बदलते रहते हैं, कायम रहते हैं, सुरक्षित रहते हैं और परिपूर्णता को प्राप्त होते हैं। वे देखते हैं कि प्रेम जीवन के लिए एक आवश्यक तत्त्व ही नहीं है किन्तु वह जीवन का एक मात्र नियम है, बल्कि यों कहना चाहिए कि वह स्वयं जीवन है। यह जान कर वे अपने समस्त जीवन को प्रेममय बनाते हैं और अपने निजत्व का ध्यान छोड़ देते हैं। वे ईश्वर के आदेश का इस प्रकार पालन करके प्रेम की शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं और अपने भाग्य के स्वामी बन कर पूर्णतया स्वतंत्र हो जाते हैं।

चूँकि विश्व प्रेम के आधार पर खड़ा है, इसलिए वह अब तक क़ायम है। केवल प्रेम में ही सुरक्षित रखने की शक्ति है। मनुष्य के हृदय में जब तक घृणा का वास रहता है तब तक वह संसार के नियम को कठोर समझता है, परन्तु जब उसका हृदय दया और प्रेम से पसीज जाता है तब वह संसार के नियम में निःसीम दयालुता पाता है। संसार का नियम ऐसा दयालु है कि वह मनुष्य को उसकी अनभिज्ञता से भी सुरक्षित रखता है। प्रत्येक मनुष्य इस संसार में एक तुच्छ व्यक्ति है परन्तु वह अपने आप को बहुत बड़ा समझता है और इस प्रकार अपनी तुच्छ चेष्टाओं के द्वारा संसार के नियम का उल्लंघन करता है। इसका फल यह होता है कि वह अनेक दुःखों में फँस जाता है और अंत में, जब उसके दुःख बहुत बढ़ जाते हैं तब उसमें समझ आने लगती है; और जब उसमें समझ आ जाती है तब वह प्रेम का महत्त्व समझता है और यह जान जाता है कि प्रेम मेरे जीवन का ही नहीं किन्तु संसार का नियम है। प्रेम दंड नहीं देता, मनुष्य अपनी द्वेष-बुद्धि के कारण अपने आप को दंड देता है; वह पाप की ओर झुकता है और प्रेम के नियम का उल्लंघन करता है। जब मनुष्य जल जाता है तब क्या वह अग्नि को दोषी ठहराता है? इसलिए जब मनुष्य के ऊपर दुःख पड़े तब उसे उस दुःख का कारण अपनी ही अज्ञानता अथवा नियमोल्लंघन में खोजना चाहिए।

प्रेम संपूर्ण सुख है और इसलिए उसमें दुःख नहीं होता। यदि मनुष्य पवित्र प्रेम के विरुद्ध न तो विचार करे और न कार्य करे, तो उसे दुख कदापि नहीं हो सकता। यदि कोई मनुष्य

प्रेम को जानना चाहता है और उसके अक्षय सुख को भोगना चाहता है, तो उसे अपने हृदय में प्रेम का बीज बोना चाहिए ; उसे स्वयं प्रेम बन जाना चाहिए ।

जो मनुष्य प्रेम की प्रेरणा से सब कार्य करता है न तो कोई उसका साथ छोड़ता और न उसको कोई कठिनाई उपस्थित होती है, क्योंकि प्रेम (निःस्वार्थ प्रेम) ज्ञान भी है और शक्ति भी । जिसने प्रेम करना सीख लिया है उसने प्रत्येक कठिनाई पर अधिकार प्राप्त करना, प्रत्येक असफलता को सफलता में परिणत करना और प्रत्येक घटना और परिस्थिति को सुखपूर्ण और सुंदर बनाना सीख लिया है ।

प्रेम के मार्ग पर चलना अपने आप को वश में करना है और मनुष्य प्रेम-पथ पर ज्यों ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों त्यों वह ज्ञान संपादन करता जाता है । जब वह प्रेम के पास पहुँच जाता है तब वह उस दिव्य शक्ति के द्वारा, जिसे वह मार्ग में प्राप्त कर लेता है, अपने शरीर और मस्तिष्क पर संपूर्ण अधि-कार जमा लेता है ।

भरपूर प्रेम से भय कोसों दूर भागता है । जो मनुष्य प्रेम का अर्थ समझ जाता है वह यह जान जाता है कि समस्त विश्व में कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो हानि कारक हो । वह जान जाता है कि और तो क्या पाप भी, जिसको सांसारिक और विश्वास न करने वाले मनुष्य दुर्जय समझते हैं, निबल तथा नाशवान् है और पवित्रता की प्रबल शक्ति के सामने काफूर

हो जाता है । भरपूर प्रेम संपूर्ण अहिंसा को कहते हैं । जिस मनुष्य ने दूसरों को हिंसा पहुँचाने के विचारों तथा इच्छाओं को नष्ट कर डाला है उसकी सब रक्षा करते हैं और वह जान जाता है कि मैं अजेय हो गया हूँ ।

भरपूर प्रेम भरपूर सहनशीलता है । क्रोध अथवा चिड़चिड़ापन उसके पास नहीं फटक सकता । वह आपत्ति काल को भी पवित्रता के द्वारा सुख मय बना लेता है । वह शिकायत करना नहीं जानता । जो प्रेमी है वह किसी बात पर शोक नहीं करता, किन्तु सब घटनाओं और स्थितियों का सहर्ष स्वागत करता है ; इस लिए वह सदा सुखी रहता है और उसको कभी शोक का सामना नहीं करना पड़ता ।

भरपूर प्रेम भरपूर विश्वास है । जिसने पदार्थों को प्राप्त करने की इच्छा को नष्ट कर दिया है उसको उनके चले जाने का भय नहीं सता सकता । हानि और लाभ दोनों ही उसके लिए एक से हैं, वह किसी से सरोकार नहीं रखता । वह सब के साथ निरंतर प्रेम का व्यवहार करता है ; इसलिए प्रेम उसकी रक्षा करता है और उसकी आवश्यकताओं की अच्छी तरह पूर्ति करता है ।

भरपूर प्रेम भरपूर शक्ति है । जो मनुष्य बुद्धिमानी के साथ प्रेम करता है वह दूसरों पर अपना ऐश्वर्य प्रकट किये बिना ही उन पर शासन करता है । जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है उसकी आज्ञा का पालन सब मनुष्य करते हैं । उसके

जी में किसी काम के करने का ज्यों ही विचार आता है त्यों ही वह काम हो जाता है। उसके मुख से ज्यों ही कोई बात निकलती है त्यों ही सारा संसार उसका पालन करने को दौड़ता है। उसका प्रत्येक विचार उसको उसके उद्देश्य की ओर ले जाता है और उसका प्रत्येक कार्य उसको सिद्धि की ओर ले जाता है। वह प्रेम के नियम के अनुसार चलता है और अपनी तुच्छ इच्छा को उसमें दख़ल नहीं देने देता । इसलिए दैवी शक्ति उसमें प्रवेश करके अनेक उत्तम कार्य करती रहती है । इस प्रकार वह स्वयं शक्ति बन जाता है ।

भरपूर प्रेम भरपूर विवेक है । जो मनुष्य सब बातों को समझता है वही सब से प्रेम करता है । चूँकि वह अपने हृदय के भावों को जानता है, इसलिए वह दूसरों के हृदयों की कठिनाइयों को भी जान लेता है और बड़ी नम्रता के साथ उनके अनुकूल आचरण करता है। प्रेम बुद्धि को प्रकाशमान कर देता है; प्रेम के बिना बुद्धि अंधी और निर्जीव रहती है । जो काम बुद्धि द्वारा नहीं हो सकता उसे प्रेम कर दिखलाता है; प्रेम उन बातों को भी जान लेता है जिनको बुद्धि नहीं जान सकती ।

प्रेमी की आँख सब बातों को देख लेती है । उसे संसार की बातें उलझन नहीं मालूम होतीं, किन्तु वह उन में कार्य कारण का संबंध देखता है और उनको अक्षय सिद्धान्तों के अनुकूल पाता है। परमेश्वर स्वयं प्रेमस्वरूप है; इसलिए प्रेम से बढ़ कर कोई चीज़ नहीं है। जो मनुष्य पवित्र ज्ञान का संपादन करना चाहता है उसे पवित्र प्रेम को खोजना चाहिए ।

दिव्य जीवन।

भरपूर प्रेम भरपूर शान्ति है। जिसके हृदय में प्रेम है उस के पास शोक नहीं आ सकता। उसके मस्तिष्क तथा हृदय में शान्ति रहती है।

यदि तुम सर्वज्ञता प्राप्त करना चाहते हो, तो सब से प्रेम करना सीखो। यदि तुम मोक्ष की अभिलाषा रखते हो तो अपने हृदय में प्रेम और दया को निरंतर बढ़ाते रहो।

संपूर्ण स्वतंत्रता ।

मोक्षधाम में किसी प्रकार का बंधन नहीं है । वहाँ पर संपूर्ण स्वतंत्रता है । यही मोक्षधाम का महात्म्य है । यह महान् स्वतंत्रता केवल आज्ञापालन के द्वारा प्राप्त होती है । जो मनुष्य ईश्वर के आदेशों के अनुसार चलता है वह ईश्वर का सहकारी बन जाता है और इसलिए वह अपनी अंतरस्थ शक्तियों पर और बाह्य परिस्थितियों पर अधिकार जमा लेता है । मनुष्य सद्गुणों को छोड़ कर अवगुणों को ग्रहण कर सकते हैं, परन्तु अवगुण सद्गुणों पर कभी अधिकार प्राप्त नहीं कर सकते ; यही स्वतंत्रता का गुप्त रहस्य है । यदि मनुष्य अवगुणों को छोड़ कर सद्गुणों को ग्रहण कर ले, तो वह विजयी हो जायगा और संपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा ।

अपनी वासनाओं को बढ़ने देना दासत्व है ; अपने ऊपर विजय प्राप्त करना स्वतंत्रता है । जो मनुष्य अपना दास बना

हुआ है वह अपने बंधनों से प्रेम करता है और उनमें से एक को भी इस डर से नहीं तोड़ता कि कहीं उसके भोग विलास में कमी न आ जाय। वह अपनी वासनाओं की पूर्ति करना नहीं छोड़ता, क्योंकि ऐसा करने में उसे कुछ लाभ नहीं दिखाई देता। इस प्रकार वह अपने आप को अपनी वासनाओं का दास बना लेता है।

आत्मज्ञान के द्वारा संपूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति होती है। जब तक मनुष्य अपने आप से, अपनी इच्छाओं से, अपनी मनोवृत्तियों और विचारों से और उन अंतरस्थ कारणों से जो उस के जीवन और भाग्य का निर्माण करते हैं अनभिज्ञ रहता है और न तो अपने आप को समझता है और न अपने ऊपर अधिकार जमा सकता है तब तक वह मनोविकारों, शोक और दुःख के बंधन में बँधा रहता है। संपूर्ण स्वतंत्रता के साम्राज्य में पहुँचने के लिए ज्ञान के द्वार में होकर जाना पड़ता है।

जितना वाह्य अत्याचार देखने में आता है वह सब उस वास्तविक अत्याचार का परिणाम है जो मनुष्य के भीतर होता रहता है। अत्याचार को रोकने के लिए मनुष्य वर्षों से स्वतंत्रता की दुहाई दे रहे हैं, और उन्होंने हज़ारों ही नियम बनाये, परन्तु वे नियम स्वतंत्रता न दे सके। मनुष्य अपने आप को स्वयं स्वतंत्रता दे सकते हैं ; यदि मनुष्य उन ईश्वरीय नियमों का पालन करें, जो उनके हृदयों पर अंकित हैं, तो वे स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। यदि मनुष्य अपने हृदयों को पाप के बंधनों से स्वतंत्र कर दें, तो संसार से अत्याचार का सर्वथा वहिष्कार

हो सकता है। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने ऊपर अत्याचार करना छोड़ दे, तो फिर कोई मनुष्य अपने भाइयों पर अत्याचार न करे।

मनुष्य वाह्य स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए नियम बनाते हैं, परन्तु वे अपनी वासनाओं के दास बने रहते हैं और इस लिए उन के लिए वाह्य स्वतंत्रता का प्राप्त करना असंभव हो जाता है। इस प्रकार वे असली चीज़ को, जो उनके भीतर है, छोड़ कर उस चीज़ के वाह्य प्रतिविम्ब का पीछा करते हैं। सब प्रकार के बाह्य बंधनों और अत्याचारों का उस समय अंत हो जायगा जब मनुष्य जान बूझ कर अपने मनोविकारों और अज्ञानता का दास बनना छोड़ देंगे। अंतरस्थ स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने से वाह्य स्वतंत्रता भी मिल सकती है।

जब तक मनुष्य निर्बलता की ओर झुकेंगे तब तक वे बल प्राप्त नहीं कर सकते; जब तक वे अज्ञान से प्रेम करेंगे तब तक वे ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते; और जब तक वे दासत्व को पसंद करेंगे तब तक वे स्वतंत्र नहीं हो सकते। बल, ज्ञान और स्वतंत्रता अब भी मौजूद हैं और वे उन सब मनुष्यों को मिल सकती हैं जो उनसे प्रेम करते हैं और उनको प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। यदि किसी जाति के मनुष्य मिल कर किसी दूसरी जाति के मनुष्यों पर आक्रमण करें तो वे स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करने से दूसरी जाति अवश्य ही अपनी रक्षा करेगी और इसका परिणाम यह होगा कि युद्ध छिड़ जायगा, मनुष्य एक दूसरे से घृणा करने लगेंगे और स्वाधीनता का नाश हो जायगा यदि प्रत्येक मनुष्य अपने ऊपर

विजय प्राप्त करले तो स्वतंत्रता मिल सकती है। जो मनुष्य दूसरों से और परमेश्वर से स्वतंत्रता माँगता है वह अपने आप को स्वयं स्वतंत्र कर सकता है।

मोक्ष की स्वतंत्रता मनोविकारों, तृष्णा इत्यादि से छुटकारा पाने पर मिलती है। पहले इस स्वतंत्रता को प्राप्त करना चाहिए और फिर बाह्य स्वतंत्रता इस प्रकार मिल जायगी जैसे कारण से कार्य की सिद्धि होती है। यदि तुम अपने आप को पाप से मुक्त कर दो तो तुम स्वतंत्र और निर्भय हो जाओगे और तुम अपने चारों ओर असंख्य भयंकर दासों को देखोगे। फिर तुम को देख कर उन में से बहुत से दास उत्साहित होंगे और तुम्हारी ही तरह स्वतंत्र हो जायँगे।

जो मनुष्य यह कहता है कि "मेरे सांसारिक कर्तव्य मुझे बड़ा दुःख देते हैं; मैं उन्हें छोड़ कर एकान्त में चला जाऊँगा और मैं वहाँ वायु के समान स्वतंत्र हो जाऊँगा," और समझता है कि मैं इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त कर लूँगा, वह और भी कड़े दासत्व में फँस जायगा। स्वतंत्रता रूपी वृक्ष कर्तव्य रूपी भूमि में उगता है और जो मनुष्य इस वृक्ष के मीठे फलों को खाना चाहता है उसे कर्तव्य पालन में सहर्ष लग जाना चाहिए।

जो मनुष्य स्वार्थ साधन से छुटकारा पा गया है वह प्रसन्न चित्त और शान्त रहता है और सब कामों के करने के लिए सदा तैयार रहता है। दुःख अथवा थकावट उसके हृदय में

प्रवेश नहीं कर सकती, और दैवी शक्ति उसके प्रत्येक बोझ को हलका कर देती है, जिसके कारण उसे बोझ नहीं मालूम होता। वह अपने बंधनों को लिए हुए कर्तव्य से भागने का प्रयत्न नहीं करता, किन्तु उन बंधनों को तोड़ कर स्वतंत्र हो जाता है।

अपने आप को पवित्र करो; अपने आप को ऐसा बनाओ कि निर्बलता, प्रलोभन तथा पाप तुम को भेद न सकें; क्योंकि तुम को वह संपूर्ण स्वतंत्रता, जिसकी खोज सारे संसार को है केवल अपने हृदय में ही मिल सकती है।

महानता और भलमनसाहत ।

भलमनसाहत, सरलता और महानता ये तीनों बातें एक ही हैं । इनको अलग अलग नहीं कर सकते । महानता की उत्पत्ति भलमनसाहत से होती है और भलमनसाहत में अत्यंत सरलता होती है । भलमनसाहत के बिना महानता नहीं ठहर सकती । बहुत से मनुष्य आँधी के समान दूसरों को विध्वंस करने के लिए संसार में जन्म लेते हैं, परन्तु वे बड़े नहीं हैं । बड़े मनुष्यों का काम बनाना और रक्षा करना है, न कि बिगाड़ना और विध्वंस करना । महात्मा सदा नम्र स्वभाव के होते हैं ।

बड़े आदमी कभी दिखावे को पसंद नहीं करते । वे चुप चाप काम किया करते हैं और किसी से अपनी प्रशंसा नहीं चाहते । यही कारण है कि महात्मा न तो सुगमता से मिलते हैं और न पहिचाने जा सकते हैं । जो मनुष्य किसी बड़े और ऊँचे पर्वत के पास रहते हैं वे उसे नहीं देख सकते ; इसी प्रकार

महात्माओं को भी कोई निकट से नहीं देख सकता। पर्वत की विशालता उसी समय मालूम होती है जब मनुष्य उससे दूर चले जाते हैं। इसी प्रकार महात्माओं को उनके समकालीन मनुष्य नहीं देख सकते ; समय के गुजरने पर ही उनकी महानता प्रकट होती है। दूरी में यही विचित्रता है। जब तक मनुष्य पर्वत के निकट रहते हैं तब तक वे अपने घरों, वृक्षों और पत्थरों को देखा करते हैं। बहुत थोड़े मनुष्य उस पर्वत के विषय में विचार करते हैं जिस के तले वे रहते हैं और उन से भी कम मनुष्य उस पर्वत का पता लेने की चेष्टा करते हैं। परन्तु दूर से देखने पर छोटी छोटी चीज़ें दृष्टि से ओझल हो जाती हैं और तब एक मात्र उस पर्वत की विशालता दिखाई देने लगती है। सर्वप्रियता, दिखावा इत्यादि निःसार बातें शीघ्र ही मिट जाती हैं और उनका कोई स्थायी चिन्ह शेष नहीं रहता ; परन्तु महानता का विकास धीरे धीरे अप्रसिद्ध से होता है और फिर वह चिरस्थायी हो जाती है।

महात्मा तुलसीदास, सूरदास इत्यादि की क़दर उनके समय में इतनी न हुई, जितनी अब शताब्दियों के बाद हो रही है। वास्तविक प्रतिभा किसी एक मनुष्य की संपत्ति नहीं होती। वह उस मनुष्य की संपत्ति नहीं होती जिस के द्वारा वह प्रकट होती है ; वह सार्वजनिक संपत्ति होती है। उसे सत्य का प्रकाश समझना चाहिए ; वह देववाणी है जो समस्त मनुष्य जाति के लिए होती है।

प्रतिभा का प्रत्येक कार्य, चाहे वह किसी भी शिल्प से संबंध रखता हो, सत्य का प्रादुर्भाव है और किसी एक व्यक्ति से

संबंध नहीं रखता। वह सार्वजनिक होता है और उसे प्रत्येक हृदय, प्रत्येक गुण और प्रत्येक जाति ग्रहण कर लेती है। जो बात इस प्रकार ग्रहण न की जाय उसे प्रतिभा अथवा बड़प्पन न समझना चाहिए। किसी एक धर्म का पक्ष ग्रहण करके जो काम किया जाता है वह नष्ट हो जाता है, परन्तु धार्मिकता का कभी लोप नहीं होता। अमरत्व के विषय में जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया जाता है उनको लोग भूल जाते हैं, परन्तु अमर मनुष्य सदा जीवित रहता है। सत्य पर जो टीकाएँ की जाती हैं वे धूल में मिल जाती हैं और केवल सत्य शेष रह जाता है।

महात्मा वही होता है जो भला और सरल होता है। उसके हृदय में भलमनसाहत का स्रोत बहता है: वह मोक्षधाम में विचरता है और मोक्ष में पहुँचे हुए महात्माओं से संभाषण करता है।

जो मनुष्य महात्मा होना चाहता है उसे भलमनसाहत सीखनी चाहिए। बड़प्पन की खोज न करने से वह बड़ा हो जायगा। जो मनुष्य बड़प्पन को अपना लक्ष्य बनाता है वह अप्रसिद्ध रह जाता है, परन्तु जो मनुष्य अप्रसिद्धि को अपना लक्ष्य बनाता है वह बड़ा हो जाता है। बड़े बनने की इच्छा करना लघुता और गर्व को प्रकट करना है। ख्याति प्राप्त करने का प्रयत्न न करना और अहंकार को त्याग देना बड़प्पन के चिन्ह हैं।

जो मनुष्य लघु होते हैं वे अधिकार और ऐश्वर्य प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु महात्मा कभी ऐश्वर्य की इच्छा नहीं करते और इसी से वे आगामी संतति के प्रतिष्ठापत्र हो जाते हैं। जो पाने की इच्छा करता है वह गँवा देता है, परन्तु जो

गँवाने की इच्छा रखता है वह दूसरों का प्रेमपात्र बन जाता है। यदि तुम अहंकार को छोड़ कर सीधे सादे हो जाओ, तो तुम महान हो सकते हो। जो मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर एश्वर्य प्राप्त करना चाहता है उसे दीनता के सिवा कुछ नहीं मिल सकता। परन्तु जो मनुष्य सब का सेवक बनना चाहता है और स्वयं ऐश्वर्य प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं करता वह दूसरों का प्रतिष्ठापात्र बन जाता है और 'बड़ा' कहलाता है।

एक विद्वान् का कथन है-कि छोटा बनना ही बड़ा बनना है। अपने आप को भूल जाने से ही आदमी बड़ा बनता है। अपने आप को भूल जाना ही भलमनसाहत है और इसी से सुख मिलता है। जब लघु से लघु आत्मा भी अपने आप को एक क्षण के लिए भूल जाती है तब वह उतनी देर के लिए बड़ी हो जाती है। यदि वह सदा के लिए अपने आप को भूल जाय तो वह सदा के लिए बड़ी हो जाय। यदि तुम अपने निजत्व को (अपनी वासनाओं, आकांक्षाओं और गर्व को) फटे कपड़ों के समान उतार कर फेंक दो और प्रेम, दया तथा स्वार्थत्याग के मार्ग पर चलो, तो तुम छोटे नहीं रहोगे, किन्तु बड़े हो जाओगे।

जो मनुष्य गर्व करता है और एश्वर्य चाहता है वही छोटा हो जाता है, परन्तु जो मनुष्य भलमनसाहत का व्यवहार करता है वही बड़ा हो जाता है। यह संभव है कि छोटे आदमी की चमक दमक थोड़ी देर के लिए बड़े आदमी की विनयशीलता को छिपा दे, परन्तु अंत में उसका लोप विनयशीलता में इसी प्रकार हो जायगा जिस प्रकार चपल नदियों का लोप निश्चल समुद्र में हो जाता है।

मोक्ष हृदय में है ।

जब हृदय पवित्र हो जाता है तब मनुष्य जीवन के कष्टों से मुक्त हो जाता है । जब मस्तिष्क ईश्वरीय नियम के अनुकूल काम करने लगता है तब सांसारिक काम बोझ नहीं मालूम होते, किन्तु उनके करने में बड़ा हर्ष होता है । जिन मनुष्यों के हृदय पवित्र हैं वे गुलाब के समान हैं, क्योंकि उनको कष्ट के बिना ही दाना पानी मिल जाता है । परन्तु गुलाब आलसी नहीं होता ; वह पृथ्वी, वायु और धूप से सदा अपना भोजन लेता रहता है । उसके भीतर जो दैवी शक्ति मौजूद है उसके द्वारा वह धीरे धीरे बराबर बढ़ता रहता है और अंत में पूरा फूल बन जाता है । यही बात उन मनुष्यों के विषय में ठीक उतरती है जिन्होंने अपनी इच्छाओं को त्याग दिया है और परमेश्वर की इच्छा के अनुकूल चलना सीख लिया है । वे सुंदर और भले होते जाते हैं और चिन्ता तथा कष्ट से मुक्त हो जाते हैं । वे बिना प्रयोजन

कोई काम नहीं करते ; उनका कोई काम व्यर्थ नहीं जाता। उनका प्रत्येक विचार अथवा काम ईश्वरीय आदेश के अनुकूल होता है और संसार के सुख की वृद्धि करता है।

मोक्ष हृदय में है। जो मनुष्य उसे अन्यत्र खोजते हैं वे उसे नहीं पा सकते आत्मा जब तक अपने भीतर मोक्ष को न खोज लेगी तब तक वह उसे किसी बाह्य स्थान में नहीं पा सकती ; क्योंकि आत्मा जहाँ कहीं जायगी वहाँ उसके विचार और उसकी अभिलाषाएँ भी उसी के साथ जायँगी। आत्मा का बाह्य निवास-स्थान चाहे कितना ही सुन्दर हो, परन्तु यदि उसके भीतर पाप है तो बाहर अंधकार अवश्य होगा, क्योंकि पाप के कारण आत्मा के मार्ग पर सदा गहरा अंधकार (शोक की छाया) छा जाता है।

यह संसार अत्यंत सुंदर है। इसके सौन्दर्य और अनूठेपन का वर्णन नहीं हो सकता ; परन्तु पाप-ग्रसित मनुष्यों को यह संसार अंधकार मय और सुख रहित मालूम होता है। जहाँ पर मनोविकार और स्वार्थपरता है वहीं पर नरक और नरक के सब कष्ट हैं। जहाँ पर पवित्रता और प्रेम है वहीं पर मोक्ष है और मोक्ष के सब सुख हैं।

मोक्ष यहाँ पर है और सब कहीं है। वह उन सब स्थानों में है जहाँ पवित्र हृदय हैं। समस्त संसार सुख से परिपूर्ण है, परन्तु जो हृदय पाप से लिप्त है वह उस सुख को न तो देख सकता है और न भोग सकता है। किसी मनुष्य को मोक्ष में

प्रवेश करने की मनाई नहीं है ; प्रत्येक मनुष्य अपने आप को मोक्ष से स्वयं वंचित रखता है। मोक्षधाम का दिव्य द्वार सदा खुला पड़ा रहता है, परन्तु स्वार्थी मनुष्यों को वह नहीं मिल सकता। वे विलाप करते और सिर पटकते हैं, परन्तु फिर भी उस द्वार को नहीं देख सकते ; वे चिल्ला कर पुकारते हैं, परन्तु फिर भी कोई आवाज़ नहीं सुनते। जो मनुष्य मोक्ष की ओर अपनी दृष्टि लगाते हैं और मोक्ष के शब्दों की ओर अपने कान फेरते हैं वे ही मोक्ष धाम के सुंदर द्वार को देखते हैं और उस में प्रवेश करके सुखी होते हैं।

जब हृदय निर्दोष होता है और पवित्रता तथा प्रेम से भर जाता है तभी सांसारिक जीवन सुखमय प्रतीत होता है। जीवन ही धर्म है और धर्म ही जीवन है और उसी में संपूर्ण सुख और आनंद है। मतमतांतरों के झगड़ों को और पाप वृत्तियों को दूर करो ; वे न तो जीवन के और न धर्म के अंग हैं। जीवन का दैवी वस्त्र सुख और सौन्दर्य से बुना हुआ है और पवित्र धर्म में सुख ही सुख है।

निराशा और शोक, स्वार्थपरता और इच्छा के प्रतिबिम्ब हैं। यदि स्वार्थपरता और इच्छा को नष्ट कर दिया जाय तो उनके प्रतिबिम्ब भी सदा के लिए नष्ट हो जायँगे और फिर केवल मोक्ष का सुख रह जायगा।

मनुष्य का सच्चा जीवन सुख से भरपूर होता है ; संपूर्ण सुख उसका स्वत्व है ; और जब वह अपने कृत्रिम जीवन से

सच्चे जीवन में प्रवेश करता है तब वह मोक्षधाम में पहुँच जाता है। मोक्षधाम मनुष्य का घर है, और वह यहाँ है और इस समय भी मौजूद है; वह उसी के हृदय में है और यदि वह इच्छा करे तो उसे पा सकता है। मनुष्य के सारे दुःखों का कारण यह है कि वह ईश्वरीय आदेशों के प्रतिकूल चलना पसंद करता है। उसे अपने घर को लौटना चाहिए; वहाँ उसे शान्ति मिलेगी।

मोक्षमार्ग पर चलने वालों को शोक तथा व्याधि का सामना नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे पाप से दूर रहते हैं। जिन बातों को सांसारिक मनुष्य कष्ट कहते हैं उनको वे प्रेम और विवेक के आनन्द दायक कार्य समझते हैं। कष्ट तो नरक में होते हैं; वे मोक्षधाम में प्रवेश नहीं कर सकते। यह बात बहुत ही सीधी सादी है। यदि तुम्हें कोई कष्ट है तो वह तुम्हारे मस्तिष्क के सिवा और कहीं नहीं है; तुम उसे पैदा कर लेते हो, वह तुम्हारे लिए पैदा नहीं हुआ; वह तुम्हारे कार्य में नहीं है; वह किसी बाह्य वस्तु में नहीं है। तुम ही उस को जन्म देते हो और उस में जान डालते हो। यदि तुम अपनी समस्त कठिनाइयों से कुछ शिक्षा ग्रहण करो और उनको मोक्षधाम की सीढ़ियाँ समझो, तो वे कठिनाइयाँ न रहेंगी।

मोक्षमार्ग पर चलने वालों का एक बड़ा काम यह है कि वे हर एक बात को सुख में परिणत कर देते हैं। सांसारिक मनुष्य प्रत्येक बात को अज्ञान के कारण दुःख समझते हैं। जो मनुष्य अपने जीवन को प्रेममय बनाना चाहता है उसे आनंद पूर्वक

काम करना चाहिए। प्रेम वह जादू है जो सब बातों को शक्ति और सौंदर्य में परिणत कर देता है। उसके द्वारा कंगाली में से समृद्धि का, निर्बलता में से बल का, कुरूपता में से सौन्दर्य का तीक्ष्णता में से माधुर्य का और अंधकार में से प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है, और सुख की उत्पत्ति होती है।

जो प्रेमी है उसे किसी बात की कमी नहीं रहती। संसार भलेमानस को पसंद करता है। भलमनसाहत का इतना बाहुल्य है कि सब मनुष्य उसे इच्छानुसार प्राप्त कर सकते हैं। यदि तुम्हारे विचार, वचन और कार्य प्रेममय हों, तो तुम्हारी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति हो जायगी ; तुम को न तो भटकना पड़ेगा और न किसी का भय होगा।

प्रेम देखने में कभी धोखा नहीं खाता, वह प्रत्येक बात का ठीक ठीक निर्णय करता और जो कार्य करता है उसे बुद्धिमानी के साथ करता है। यदि तुम प्रेम की आँखों से देखो, तो तुम सर्वत्र सौंदर्य और सत्य को देखोगे, यदि तुम प्रेम के मस्तिष्क से निर्णय करो तो तुम कभी भूल न करोगे और तुम को कभी खेद न होगा, यदि तुम प्रेम के भाव से काम करोगे तो तुम्हारे कार्य सदा के लिए अमर हो जाएँगे।

स्वार्थपरता को सर्वथा त्याग दो। जब तक तुम्हारा समस्त जीवन प्रेममय न हो जाय तब तक तुम उद्योग को न छोड़ो। सब को और सदैव प्रेम करो। यही मोक्ष की प्राप्ति का मूल मंत्र है। तुम जो कार्य करो उसे निष्काम हो कर करो ; मोक्षमार्ग के यात्री के लिए यह आवश्यक है।

यदि तुम अपने विचार संसार को सर्वथा पवित्र करलो तो तुम इसी शरीर में रहते हुए मोक्षधाम में पहुँच सकते हो। तुम जीवन मुक्त हो सकते हो। तब तुम बाह्य संसार की सब चीजों को सौन्दर्य का वस्त्र धारण किये हुए देखोगे। जो मनुष्य अपने भीतर ईश्वरीय सौन्दर्य को खोज लेता है वह प्रत्येक बाह्य वस्तु को उसी सौन्दर्य से ढका पाता है। जिस आत्मा ने अपने आप को सुन्दर बना लिया है उसको संसार सुंदर दिखाई पड़ता है।

इस बात को अच्छी तरह याद रक्खो कि तुम में ईश्वर का अंश है। तुम अपने ही अविश्वास के कारण ईश्वर से दूर रहते हो। इसलिए आँखे खोलो और पाप के बंधनों को दूर फेंको और अपने स्वत्व को (मोक्षधाम को) ग्रहण करो। मिथ्या विश्वासों से अपनी आत्मा को कलुषित मत करो। तुम 'माटी के धोधा' नहीं हो। तुम में ईश्वर का अंश है और तुम अमर हो; यह बात तुम को खोज करने से मालूम हो सकती है। यदि तुम अपने अपवित्र विचारों का बहिष्कार कर दो, तो तुम को मालूम होगा कि तुम एक दिव्य आत्मा हो और पवित्र तथा प्रेममय विचारों से परिपूर्ण हो। इस संसार में निकृष्टता, पाप और दुःख तुम्हारे हिस्से में नहीं आये। यदि तुम इनको अपनाओगे तो ये अवश्य ही तुम्हारे गले पड़ेंगे और सर्वदा तुम्हारे साथ साथ रहेंगे।

तुम्हारे हिस्से में मोक्ष आया है न कि नरक, और तुम को वही लेना चाहिए जो तुम्हारे हिस्से में आया है। मोक्ष तुम्हारी

दिव्य

शक्ति है ; तुम को केवल यह काम करना है कि तुम उस में प्रवेश करके उस पर अपना अधिकार जमा लो। मोक्ष में सुख ही सुख है। उस में इतना सुख है कि वहाँ पर आत्मा को न तो किसी बात की इच्छा रह जाती है और न उसको किसी बात का शोक रह जाता है। वह अब और इस संसार में है ! वह तुम्हारे ही भीतर है, और यदि तुम को यह बात मालूम नहीं है तो इसका कारण यह है कि तुम उसकी ओर से विमुख रहते हो। उस को खोजने का प्रयत्न करो और वह तुम को मिल जायगा।

जीवन की यथार्थता को समझो। अंधकार को छोड़ कर प्रकाश में आओ। तुम सुख के लिए बनाये गये हो। पवित्रता विवेक, प्रेम, समृद्धि, सुख और शान्ति ये मोक्षधाम के अक्षय तत्व हैं, और ये तुम्हारे ही हैं, परन्तु जब तक तुम पाप से कलुषित हो तब तक तुम इन पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते।